अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-38, अंक-2, 1-15 सितम्बर, 2014

विनोबा जयन्ती

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारतीय सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुखपत्र

सर्वोदय जगत

सत्य-अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 38, अंक : 02, 1-15 सितंबर, 2014

संपादक मंडल

डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'
विमल कुमार अशोक मोती

संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595

कार्यकारी संपादक
अशोक मोती
मो. : 7488387174

संपादकीय कार्यालय

सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी - 221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : ssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	पांच रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353

विज्ञापन दर

पूरा पृष्ठ	:	2000 रुपये
आधा पृष्ठ	:	1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ	:	500 रुपये

इस अंक में...

1. इस दुनिया की प्यास... 2
2. विनोबा : एक युग द्रष्टा... 3
3. अणु युग में अहिंसा... 4
4. मैं किसी युद्ध में विश्वास... 6
5. सर्वोदय और विश्व-शांति... 8
6. शिक्षा का पुराना ढांचा... 9
7. समन्वय पर प्रहार मत... 11
8. सर्व-धर्म-स्मरण... 12
9. मेरे साथी मुझे 'पागल' कहते... 14
10. भूदान : विनोबा की विश्व... 16
11. गांधी, काका कालेलकर... 19
12. विनोबा! तुम्हारी जय हो!... 20

'सर्वोदय जगत' में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनके साथ सर्व सेवा संघ या सम्पादक मंडल का सहमत होना कोई आवश्यक नहीं है।

इस दुनिया की प्यास है साम्ययोग यानी सर्वोदय

❑ विनोबा

हमारे सामने एक बहुत बड़ी चुनौती है। भारत की आजादी की लड़ाई इस ढंग से लड़ी गयी कि सारी दुनिया का ध्यान भारत की ओर खींचा गया और दुनिया में भारत को प्रतिष्ठा मिली। हम उस प्रतिष्ठा को बढ़ाना चाहते हैं और हमारे सामने नया समाज बनाने का काम है। हम हमारे समाज को नैतिक समाज बनाना चाहते हैं, जिसमें हर एक व्यक्ति अपनी शक्ति समाज को समर्पित करे।

हर एक युग के लिए नये आदर्श और नये कार्य मिलते रहते हैं। शास्त्रों में कहा है—'अचितं ब्रह्म जुजुषः युवानः।' युवा ऐसे ब्रह्म का चिन्तन करते हैं, जिसका चिन्तन पहले कभी नहीं हुआ था। नये युग के लिए नया ब्रह्म। जिस समाज के सामने नया ब्रह्म नहीं, वह क्षीण होता है। पहले हमारे सामने 'स्वराज्य' का ब्रह्म था, अब हमारे सामने 'सर्वोदय' का ब्रह्म है। हमें इतिहास पढ़ना नहीं, बनाना है।

सर्वोदय एक अर्थघन शब्द है। उसमें क्रांतिकारिता भी है। सर्व का उदय तब होता है, जब समाज में पारस्परिक हितविरोध न हो। लेकिन आज ऐसा कृत्रिम जीवन बन गया है कि उसमें परस्पर हित-विरोध खड़ा हो गया है। परिवार में ऐसा हित-विरोध नहीं होता है। परिवार का यह न्याय समाज पर लागू करना, यही 'सर्वोदय' है। भारत में तो शब्द चलता है, सर्वभूतहिते रताः। यहां भूतमात्र के हित की बात सोची गयी। लेकिन मानव का कार्य तो मानव से ही शुरू होगा, इसलिए कम-से-कम मानव-समाज में समान हित स्थापित हो। हमारे संस्कृत ग्रंथ में राग-द्वेषरहित व्यक्ति के लिए 'सर्वोदय तीर्थ' शब्द इस्तेमाल किया गया है।

साम्ययोग में धर्म-विचार, अर्थ-विचार और विज्ञान-विचार, तीनों इकट्ठा हुए हैं। धर्म-विचार करुणा सिखाता है, अर्थ-विचार अर्थोत्पादन बढ़ाने की बात सिखाता है और विज्ञान सिखाता है कि सहयोग ही से शक्ति पैदा होती है। विज्ञान शक्ति की, अर्थशास्त्र सम्पत्ति की, और धर्म बुद्धि की शोध करता है। ये तीनों चीजें साम्ययोग में हैं।

एक-एक जमाने की एक-एक प्यास होती है। इस जमाने की प्यास है साम्ययोग। नौकर को कायम नौकर रखकर कोई मालिक भले ही उसे सब तरह से सुख पहुंचाये, पर उतने से इस जमाने का समाधान नहीं हो सकता। मालिक जब नौकर को अपने आधे सिंहासन पर बिठायेगा, तभी जमाने का समाधान होगा। एक जमाने में दास्यभक्ति अच्छी मालूम होती थी, परन्तु आज के जमाने को भूख है, सख्य-भक्ति की!

सारी दुनिया में नया युग आ रहा है। इस युग में शिवो भूत्वा शिवं यजेत् ही करना होगा। भगवान् शिव अपने भक्तों को शिव बनाकर प्रेम से अपनी सत्ता चलाते हैं। प्रेम की सत्ता एक ऐसी सत्ता है, जो किसी सम्राट के हाथ में भी नहीं होगी। ❑

संपादकीय

विनोबा : एक युग द्रष्टा

पूंजीवाद को वास्तविक चुनौती देने तथा उसका एक ठोस विकल्प गांधीजी ने प्रस्तुत किया था। लेकिन आजादी की प्राप्ति के बाद अधिकांश कांग्रेसी नेता राजसत्ता के माध्यम से परिवर्तन लाने के काम से जुड़ गये। ऐसे में लोकसत्ता के निर्माण का काम एवं लोकसत्ता के माध्यम से पूंजीवाद के वास्तविक विकल्प को खड़ा करने का काम आजादी के बाद रुक गया होता। इन परिस्थितियों में, विनोबा ने एक युग द्रष्टा के रूप में, संपूर्ण जगत के सामने लोकसत्ता द्वारा नव-युग के निर्माण का कार्य आगे बढ़ाया। यह रास्ता एक ही समय में हिंसा और दंडशक्ति आधारित राजसत्ता के माध्यम से विकल्प खोजने के प्रयास को भी नकारता था तथा दूसरी ओर जागतिक लोकसत्ता के लिए ठोस अधिष्ठान भी प्रस्तुत करता था, जिसे उन्होंने ग्रामस्वराज्य की संज्ञा दी। इसके साथ ही लोकसत्ता-निर्माण के कार्य को समर्पित अहिंसक क्रांति को आगे बढ़ाने के लिए देश भर में समर्पित कार्यकर्ताओं का निर्माण भी उनकी प्रेरणा से हुआ।

आजादी के बाद देश के नव-निर्माण में ग्राम समुदाय को केन्द्र में रखने तथा सशक्त बनाने में सबसे बड़ी बाधा भूमि का असमान वितरण तथा भूमिहीन किसानों का बड़ी संख्या में होना था। भूमि के सवाल को केवल एक समस्या के रूप में देखने के बजाय, उसे परिवर्तन का माध्यम बनाने का काम विनोबा ने किया। भूमि-दान, ग्राम-दान एवं ग्राम स्वराज्य—ये संपत्ति भावना के विसर्जन के अद्‌भुत प्रयोग थे।

दुनिया में अब तक निजी-संपत्ति को खतम करने के जितने प्रयोग हुए थे, वे राजसत्ता के हिंसा-बल पर टिके थे। इस कारण जो राजसत्ता का नियंत्रण करते थे, वे सम्पत्ति के स्वामी के समान व्यवहार करने लगे। सम्पत्ति की भावना का विसर्जन हुए बिना लोकसत्ता का निर्माण संभव नहीं था। सम्पत्ति की भावना का विसर्जन हो तथा एक ट्रस्टी की तरह लोक समुदाय, उस लोक-सम्पत्ति एवं लोक-पूंजी का इस्तेमाल करे—यह दिशा विनोबा ने अहिंसक क्रांति को दी।

जब विनोबा ने आह्वान किया कि "सबै भूमि गोपाल की", तब उनका संदेश स्पष्ट था। भूमि यानी प्रकृति प्रदत्त जीवन आधार के सभी स्रोत, व्यक्तिगत मालकियत के बाहर होंगे। लोक समुदाय उसका उपयोग, संरक्षण एवं संवर्धन करने का अधिकारी होगा। इसके लिए लोक समुदाय को और ग्राम-स्वराज्य को मजबूत बनाना होगा, प्रभावी बनाना होगा।

आज के संदर्भ में यह दृष्टि और अधिक प्रासंगिक एवं आवश्यक हो गयी है। जल, जंगल, जमीन व खनिज (भूमि के विभिन्न रूप) ये सभी पूंजीवादी दोहन के शिकार हो रहे हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां इनकी लूट का माध्यम बन रही हैं तथा जो समुदाय सदियों-सदियों से इनके साथ जुड़े थे, वे उजाड़े जा रहे हैं, बेदखल किये जा रहे हैं। जल-जंगल-जमीन व खनिज को दोहन व शोषण से बचाने की लड़ाई, पूँजीवादी बाजार के सर्वग्रासी तंत्र के खिलाफ लड़ाई है। किन्तु इस लड़ाई को सम्पत्ति भावना के विसर्जन की दृष्टि से ही लड़ा जा सकेगा, अर्थात् लोक समुदाय की मालकियत एवं ग्राम स्वराज्य के विचार को व्यवहारिक रूप देकर ही लड़ा जा सकेगा। स्वदेशी एवं ट्रस्टीशिप के विचार की आधारशिला पर ही लोक-स्वामित्व एवं ग्राम स्वराज्य के भवन का निर्माण हो सकेगा।

युग द्रष्टा के रूप में विनोबा की एक अन्य महत्त्वपूर्ण देन ब्रह्मविद्या मंदिर है। नये युग का नेतृत्व कौन करेगा तथा उस युग की प्रेरक शक्ति-संचालक शक्ति क्या होगी, इसका बीज ब्रह्मविद्या मंदिर के विचार में छिपा है। नये युग का नेतृत्व आध्यात्मिक स्त्रीतत्त्व करेगी। ध्यान रहे कि स्त्रीतत्त्व सभी में विद्यमान रहता है। ईसा, बुद्ध, गांधी एवं विनोबा जैसों में यह तत्त्व कुछ अधिक मात्रा में था। यह स्त्रीतत्त्व हिंसा, आक्रामकता, दमन, शासन एवं नियंत्रण करने के भाव से अलग प्रेम, करुणा एवं अन्य के लिए दुख सहने की क्षमता के भाव से प्रकट होता है। इस स्त्रीतत्त्व की प्रेरक शक्ति आध्यात्मिकता होगी। आध्यात्मिकता अर्थात् प्रकट भौतिक पदार्थों एवं रूपों के वैभिन्न्य के पीछे छिपे सबको जोड़ने वाली एवं सबकी मूल शक्ति (भाव) के साथ एकात्मकता। इसी कारण आध्यात्मिकता ही भौतिक वैभिन्न्य में एकता का दर्शन करायेगी, एकता के सूत्र में बांधने का कारक बन सकेगी। और इस आध्यात्मिक स्त्रीतत्त्व की संचालक शक्ति अहिंसा होगी।

इस प्रकार विनोबा ने यह इंगित किया कि अहिंसक क्रांति के मूल्य परिवर्तन एवं व्यवस्था परिवर्तन के अभियान में प्रेरक एवं संचालक शक्ति स्त्रीतत्त्व होगा। प्रत्येक सत्याग्रही एवं रचनात्मक कार्यकर्ता को इसकी साधना करनी होगी।

विनोबा के इन विचारों की जरूरत आज कहीं ज्यादा है। नेहरू युग के दौरान यह भ्रम था कि राजसत्ता, लोकसत्ता-निर्माण में बाधक नहीं बनेगी। आजादी के 67 वर्षों के बाद आज राजसत्ता पूंजी के केन्द्रीकरण को कृतसंकल्प है, बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए रास्ता और सुगम बना रही है, भूमि (अर्थात् जल-जंगल-जमीन व खनिज) पूंजीवादी बाजार की गोद में समाते जा रहे हैं तथा लोकशक्ति व लोकसत्ता के प्रकट होने की सम्भावना क्षीण होती जा रही है, ऐसे में विनोबा हमें नयी शक्ति व ऊर्जा से भर दें।

बिमल कुमार

01 सितंबर : विश्व-शांति दिवस

अणु युग में अहिंसा अनिवार्य

❑ विनोबा

क्या दुनिया में, और क्या भारत में, संत सदा आते रहे, सत्पुरुष आते रहे, और वे लोगों को आध्यात्मिक मूल्य समझाते रहे। लोग उनकी बातें सुनते रहे। जितनी समझ सके, उतनी समझते रहे। जितना आचरण कर सके, उतना करते रहे, और आचरण न कर पाये, तो उसको अपनी लाचारी मानकर मूल्यों का आदर करते रहे, और मानते रहे कि वे व्यवहार में चलते नहीं हैं।

अहिंसा के लिए ऐतिहासिक भूमिका

किन्तु जब युग की मांग का और संतों के उपदेश का संयोग होता है, तो उससे क्रांति होती है। गांधीजी के बारे में हमको यही देखने को मिला। गांधीजी ने कहा, ''हिंसा का प्रतिकार अहिंसा से करो। असत्य का प्रतिकार सत्य से करो।'' उन्होंने निःशस्त्र प्रतिकार करना सिखाया। वैसे देखा जाय, तो यह एक पुरातन बात है। कोई नयी बात नहीं है। यह भारत की संस्कृति का ही एक फूला-फला स्वरूप है। बुद्ध ने, महावीर ने और दूसरे अनेक संतों ने हमको यही सिखाया था। किन्तु जब यह बात गांधीजी के मुंह से निकली, तो उसका एक क्रांतिकारी अर्थ प्रकट हुआ, क्योंकि उसके लिए ऐतिहासिक भूमिका तैयार थी।

अंग्रेज यहां आये और उन्होंने हमसे हमारे हथियार छीन लिये। उन्होंने भारत की जनता को बिलकुल निहत्था, निःशस्त्र बना दिया। पहले किसी भी राजा ने कहीं भी ऐसा नहीं किया था। ऐसी परिस्थिति में भारत के सामने एक बड़ा सवाल खड़ा हो गया। या तो हमेशा के लिए अंग्रेजों के गुलाम बने रहें, या कोई नया अधिक शक्तिशाली शस्त्र खोज निकालें। क्योंकि इतने बड़े देश का हमेशा के लिए गुलाम बना रहना तो असम्भव था। इस कारण निःशस्त्र मार्ग की खोज करने की एक ऐतिहासिक आवश्यकता खड़ी हो गयी। **इसी के फलस्वरूप महात्मा गांधी आये। वे न आये होते, तो दूसरा कोई आया होता। उन्होंने देश के सामने अपना एक नया दर्शन यह रखा कि एक विशिष्ट प्रकार के प्रतिकार द्वारा सारी दुनिया के दुःखों का निवारण किया जा सकता है।**

साधारण स्थिति में लाखों लोग उनकी बात को न मानते। हाँ, बहुत हुआ, तो मेरे समान दो-चार शिष्य उनको मिल जाते। किन्तु उनका यह विचार सारे देश में फैल गया और उस पर कुछ टूटा-फूटा अमल भी हुआ। अंग्रेजों द्वारा हथियार छीन लेने से देश में एक विशिष्ट परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी। इस कारण गांधीजी की अहिंसा की बात को युग की मांग का बल मिल गया।

निर्वैरता और प्रतिकार-वृत्ति का समन्वय

अंग्रेजों के जबरदस्त साम्राज्य का सामना किस प्रकार किया जाय, इसकी अहिंसक युक्ति गांधीजी ने हमको सिखायी। उन्होंने कहा : ''हम निर्वैर भी रहेंगे और सामना भी करेंगे।'' दुनिया को यह एक बड़ा विचार मिला। इसमें निर्वैरता और प्रतिकार-वृत्ति दोनों का संगम हुआ। फलस्वरूप समाज के लिए एक रास्ता खुला। गांधीजी ने हमको एक ऐसी युक्ति सिखायी कि जिससे सब बड़े-बड़े शस्त्र बेकार बन जायँ। युक्ति यह थी कि अपना राज्य चलाने के लिए अंग्रेजों को जिन हजारों लोगों की और करोड़ों प्रजाजनों के जिस सहयोग की आवश्यकता थी, वह सहयोग उनको न दिया जाय। यदि हम ऐसा कर सकें, तो अंग्रेज कितने भी शक्तिशाली क्यों न हों, उनका कोई जोर हम पर चल न पाये। हमारे सहयोग न देने पर वे हमको मारेंगे और सतायेंगे; फिर भी हम उनको सहयोग नहीं देंगे। हम मरना पसन्द करेंगे, पर अंग्रेजों की मरजी के मुताबिक उनका कोई काम नहीं करेंगे। गांधीजी ने आत्मबल की ऐसी एक युक्ति हमको सिखायी।

हममें ''नहीं'' कहने की शक्ति आनी चाहिए। आपके गलत काम में हम आपसे सहयोग नहीं करेंगे, यह कहने की शक्ति हमारे अंदर आनी चाहिए। ऐसा करते हुए मरना पड़े, तो हम मरेंगे। मौत से हम डरते नहीं हैं। यह है असल अहिंसा। अहिंसा का यह मतलब नहीं कि हम डरकर घर में घुस जायँ, और लड़ने न जायँ। उसके विपरीत, लड़ाई में शामिल होकर हमको कहना चाहिए कि मैं मरने को तैयार हूँ, लेकिन मैं किसी को मारूँगा नहीं। यह है, अहिंसा की शक्ति। और यह सच्ची शक्ति है। अहिंसा की इस शक्ति से एक छोटा बच्चा भी बड़े राक्षस का सामना कर सकता है।

गांधीजी ने हमको यह युक्ति सिखायी। इसी के साथ उन्होंने हमको यह भी सिखाया कि यह अहिंसा तो एक ऐसी जबरदस्त ताकत है कि इसकी मदद से बड़े-बड़े सवाल भी हल किये जा सकते हैं। उन्होंने राजनीति के क्षेत्र में इस अहिंसा का प्रयोग करके दिखाया।

आत्म प्रतीति के अभाव में हिंसा-अहिंसा के विषय में सिरपच्ची

लेकिन लोगों के मन में अब भी कुछ शंका रह गयी है कि हमको जो स्वराज मिला, वह केवल अहिंसा की शक्ति से नहीं मिला। निःसन्देह यह सच है कि जो स्वराज मिला, उसमें दुनिया की परिस्थिति का भी अपना बड़ा हाथ रहा। लेकिन असल बात यह है कि हमने अपने अन्दर अहिंसा का उतना अनुभव नहीं किया, जितना हमको करना चाहिए था। हमारी अहिंसा लाचारी की अहिंसा रही। दुर्बलों की अहिंसा रही। गांधीजी के मार्गदर्शन में देश में जो अहिंसक लड़ाई चली, उसमें हमने अहिंसा का टूटा-फूटा आचरण किया। अपने मन में द्वेष रखते हुए हम ऊपर के मन से अहिंसा का

आचरण करते रहे। परिणाम यह हुआ कि स्वराज्य तो आया, पर हमको यह प्रतीति नहीं हो पायी कि हमने उसको अहिंसा से प्राप्त किया है। इसके कारण अहिंसा का सारा स्वाद ही समाप्त हो गया। हमने अहिंसा की शक्ति का कुछ चमत्कार तो देखा, फिर भी उस शक्ति के प्रताप का अनुभव हम अपने अंदर नहीं कर पाये।

यही कारण है कि हिंसा-अहिंसा के सवाल का अंतिम निर्णय बहुतों के मन में अभी तक हो नहीं पाया है। आमतौर पर लोग यह मानकर चलते हैं कि थोड़ी-बहुत हिंसा तो करनी ही पड़ती है। पुराने जमाने में तो अच्छे-अच्छे लोग भी ऐसा ही मानते थे। किन्तु आज गांधीजी के आने और जाने के बाद भी हमने इस विषय में अपने मन के साथ एक समझौता कर लिया है। पहले धर्मों ने भी ऐसा ही किया था। यह मान लिया गया था कि अहिंसा अवश्य ही अच्छी चीज है; लेकिन वह व्यक्तिगत जीवन के लिए है, समाज में तो हिंसा के साथ थोड़ा समझौता करना ही पड़ता है। यदि ऐसा न किया जाय, तो फिर रविवार के दिन पूरी श्रद्धा के साथ बाइबल पढ़ने के बाद बाकी के छहों दिन नये-नये शस्त्रास्त्र तैयार करके उनके अम्बार लगाते रहने की बात क्यों कर हो सकती है? इसका कारण यह है कि अभी समाज में नैतिक साधनों की उतनी प्रतिष्ठा नहीं बनी है, जितनी बननी चाहिए।

इसलिए मैं अकसर कहा करता हूं कि भले ही हम सब गांधीजी के अनुयायी माने जाते हों, पर असल में हममें से अधिकतर लोग तिलक महाराज के ही अनुयायी हैं। लोकमान्य ने अपने 'गीता-रहस्य' में अहिंसा का बहुत गौरव किया है, लेकिन बाद में कहा है कि ''उसका स्थान व्यक्तिगत जीवन में है। सार्वजनिक जीवन में अहिंसा चल नहीं पाती।'' व्यवहार में अधिकतर लोग लोकमान्य की इस मान्यता का ही अनुसरण करते हैं। और जब सामाजिक जीवन में अहिंसा के आचरण का प्रश्न खड़ा होता है, तो हिंसा-अहिंसा के बारे में वे समझौता कर लेते हैं।

हिंसा के बारे में जड़ जमाकर बैठा भ्रामक विश्वास

सच पूछा जाय; तो बात यह है कि हमको अभी अहिंसा की शक्ति का पूरा-पूरा भान हुआ नहीं है। हमारे मनों में हिंसा-अहिंसा के विषय में अभी तक कोई स्पष्टता हुई नहीं है। यही कारण है कि इतने सालों के बाद भी देश में हिंसा कम नहीं हुई है। लोगों के मन में अभी वह मौजूद है। आज हवा में हिंसा फैली हुई है, और दिलों में यह गलत विचार जड़ जमाकर बैठा है कि हिंसा से कुछ काम हो जाते हैं। हिंसा से कुछ काम होंगे तो जरूर लेकिन वे बिलकुल निकम्मे काम होंगे, और उनके हो जाने पर भी कुल मिलाकर नुकसान ही होगा। अभी यह बात समझनी बाकी रही है।

ज्यादातर लोग यह सोचते हैं कि गांधीजी और सुभाष दोनों के मार्ग हैं, देश के लिए दोनों की जरूरत है, और जब दोनों का मिलाप होगा, तभी काम बनेगा। लोगों के मनों में इस तरह का एक भ्रम आज भी है।

अणुयुग में अहिंसा अनिवार्य

लेकिन असल में आज विज्ञान ने मनुष्य के सामने एक समस्या खड़ी कर दी है, जो पहले नहीं थी। हिंसा के जो साधन पहले मौजूद थे, उनसे कुछ सवाल हल होते रहते थे, इसलिए हिंसा फूलती-फलती रहती थी। **लेकिन अब परमाणु से बने शस्त्रास्त्र आ गये हैं। इसलिए अब या तो अहिंसक समाज की रचना होगी या मनुष्य जाति का अंत होगा। विज्ञान ने मनुष्य के सामने यह समस्या खड़ी कर दी है। मेरी अपनी श्रद्धा यह है कि ये परमाणु से बने शस्त्रास्त्र मनुष्य को अहिंसा की दिशा में ले जायेंगे। यदि ऐसा नहीं हुआ, तो मनुष्य जाति मिट जायेगी। यदि ईश्वर की इच्छा संहार की न रही, तो अहिंसक समाज की रचना अनिवार्य है।**

गांधीजी की मृत्यु के बाद जनरल मैकआर्थर ने अपने एक संदेश में कहा था कि दुनिया को किसी-न-किसी दिन गांधीजी की बात ही सुननी पड़ेगी। उसके बिना दूसरा कोई चारा है ही नहीं। यह बात सेना के एक बड़े सेनापति ने कही है। उनको यह बात इसलिए कहनी पड़ी है कि परमाणु से बने शस्त्रास्त्रों के कारण एक विशिष्ट परिस्थिति उत्पन्न हो चुकी है।

अहिंसा के आधार पर सर्वोदयी समाज की रचना

इसलिए अब यह बात समझ में आ जानी चाहिए कि आज हिंसा पुराने जमाने की चीज बन चुकी है, और अहिंसा के बारे में गांधीजी की बात हमारे युग के बिलकुल अनुकूल बात है। इस कारण अगर अब हम अपने सामाजिक और आर्थिक प्रश्नों को अहिंसा की शक्ति से हल करके दिखा दें, तो उनसे दुनिया को एक मार्ग मिल जायेगा। लगता है कि हिंसा कर-करके थकी हुई दुनिया आज हिंसा को छोड़ देने के लिए तैयार हो सकती है। हमें दुनिया को यह प्रतीति कर देनी है कि सामाजिक सवालों को अहिंसा से हल किया जा सकता है।

गांधीजी केवल एक व्यक्ति नहीं थे। वे तो अहिंसा तत्त्व के एक प्रतीक थे। मनुष्य जाति को उनके द्वारा अहिंसक समाज-रचना की एक मोटी रूपरेखा प्राप्त हुई है। आज की दुनिया में सर्वोदय की आवाज न्याय की स्थापना की आवाज है। उसमें अन्याय और शोषण को समाप्त करने की ललकार है। आज के युग की विभीषिका से मुक्ति पाने का उपाय सर्वोदय-विचार हमको दिखा रहा है। आज की परिस्थिति को बदलने के लिए वह समाज में एक ऐसी क्रांतिकारी चेतना जगाना चाहता है, जिससे आम जनता आगे और संगठित बने, समाज में न्याय और भाईचारे का वातावरण उत्पन्न हो जाय, और गांव-गांव में सत्ता और सम्पत्ति के जुए से मुक्त होने की शक्ति उत्पन्न हो सके। विकेन्द्रीकरण और ग्रामस्वराज्य का यह विचार मनुष्य जाति के लिए गांधीजी की एक अनोखी देन है। ❑

मैं किसी युद्ध में विश्वास नहीं रखता

फिलिस्तीन में यहूदी

❑ महात्मा गांधी

अन्याय व हिंसा की नींव पर बने इजराइल को लेकर महात्मा गांधी के विचार अत्यन्त स्पष्ट थे। ब्रिटेन द्वारा बंदूक की नोक पर जबरन यहूदियों को फिलिस्तीन बसाया गया और वहां के मूल अरब निवासियों को आज तक शरणार्थी बनकर दर-दर भटकना पड़ रहा है। धर्म और राजनीति के घालमेल के विध्वंसक परिणाम हम आज गाजा-पट्टी में देख रहे हैं। यह आलेख हरिजन के 26.11.1938 के अंक में प्रकाशित हुआ था, जो मूल रूप में प्रस्तुत है। **–का. सं.**

मुझे अनेक पत्र मिले हैं, जिनमें मुझसे फिलिस्तीन में अरब-यहूदी प्रश्न और जर्मनी में यहूदियों पर हो रहे अत्याचारों पर अपने मत प्रकट करने को कहा गया है। मैं इस अत्यन्त कठिन प्रश्न पर हिचकिचाहट के साथ अपने जोखिम भरे विचार सबके सामने रख रहा हूं। वैसे मेरी पूरी सहानुभूति यहूदियों के साथ है। मैं दक्षिण अफ्रीका से ही उन्हें अत्यन्त आत्मीयता से जानता हूं। उनमें से कुछ तो मेरे जीवनभर के साथी बन गये हैं। इन दोस्तों के माध्यम से ही मुझे उन पर युगों से हो रहे अत्याचारों के बारे में पता चला। वे ईसाई धर्म के अछूत हैं। ईसाइयों द्वारा उनके साथ किया जा रहा व्यवहार और हिन्दुओं द्वारा अछूतों के साथ किये जा रहे व्यवहार में काफी समानता है।

उपरोक्त दोनों ही मामलों में अमानवीय व्यवहार को न्यायोचित ठहराने में धार्मिक दण्ड विधान का सहारा लिया गया है। दोस्ती के अलावा यहूदियों से सहानुभूति हेतु मेरे पास अनेक अन्य कारण भी हैं। परन्तु न्याय की आवश्यकता के चलते मेरी सहानुभूति मुझे अंधा नहीं बना सकती। यहूदियों के लिए एक राष्ट्रीय घर की पुकार मुझे बहुत उचित नहीं प्रतीत होती। बाइबिल में इस हेतु अनुमोदन भी चाहा गया है और आज तो यहूदी दुराग्रह से फिलिस्तीन में लौटने हेतु लालायित हैं। पृथ्वी पर निवास करने वाले अन्य व्यक्तियों की तरह वे भी उसी देश को अपना घर क्यों नहीं मानते जहां पर वे पैदा हुए हैं और अपनी आजीविका अर्जित करते हैं? फिलिस्तीन ठीक उसी तरह अरब लोगों का है जिस तरह से इंग्लैण्ड अंग्रेजों का या फ्रांस-फ्रांसीसियों का है। अरब लोगों पर यहूदियों को थोपना गलत और अमानवीय है। फिलिस्तीन में आज जो भी हो रहा है इसे किसी भी नैतिक मापदंड पर न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता।

अरब लोगों के गौरव को कम करना जिससे कि आंशिक या पूरा फिलिस्तीन यहूदियों को उनके राष्ट्रीय घर की तरह मिल जाये, हर सूरत में मानवता के खिलाफ एक अपराध है। **इस हेतु श्रेष्ठ मार्ग यही होता कि यहूदी जहां भी पैदा हुए हैं या कमा-खा रहे हैं वहीं पर उनके साथ न्यायोचित व्यवहार करने पर जोर दिया जाता। फ्रांस में पैदा हुए यहूदी ठीक उसी तरह से फ्रांसीसी हैं जिस तरह से फ्रांस में पैदा हुआ ईसाई, फ्रांसीसी हैं। राष्ट्रीय घर की यह मांग जर्मनी द्वारा यहूदियों के निष्कासन के विरुद्ध एक रंगीन तर्क है।** परन्तु जर्मनी द्वारा यहूदियों पर किये जा रहे अत्याचारों की भी इतिहास में कोई सानी नहीं है। अब से पहले नृशंसता कभी भी इतनी बेकाबू या पागलपन से भरी नहीं थी, जिस हद तक आज हिटलर चला गया है। वह सब कुछ धार्मिक द्वेष से कर रहा है। इसके (धर्म के) नाम पर किसी भी प्रकार की अमानवीयता को मानवता का कार्य माना जाने लगेगा और उसे अभी व बाद में पुरस्कृत भी किया जायेगा।

स्पष्ट रूप से किसी एक पागल किन्तु साहसी व्यक्ति के अपराध को अविश्वसनीय क्रूरता के साथ उसकी पूरी नस्ल पर थोपा जा रहा है। यदि कभी भी किसी युद्ध को मानवता के नाम पर न्यायोचित ठहराया जायेगा तो वह जर्मनी के खिलाफ, एक पूरी नस्ल के विरुद्ध बेलगाम अत्याचारों को रोकने के लिए होगा। परन्तु मैं किसी युद्ध में विश्वास नहीं रखता। अतएव इस तरह के युद्ध के परिणाम या लाभ-हानि पर विचार-विमर्श मेरे ज्ञान की सीमा और अधिकार क्षेत्र, दोनों से बाहर हैं।

यदि जर्मनी के विरुद्ध कोई युद्ध नहीं भी होता है तो भी यहूदियों के खिलाफ इस तरह का अपराध करने के बाद स्पष्ट तौर पर जर्मनी के साथ कोई मैत्री नहीं रखना चाहिए। एक देश जो कि न्याय और लोकतंत्र के सिद्धांत पर खड़े होने का दावा करता है और दूसरा राष्ट्र जो कि इन दोनों का घोषित दुश्मन है, दोनों

के बीच मैत्री किस प्रकार हो सकती है? क्या ब्रिटेन का भी अपने सभी साधनों के साथ सशस्त्र तानाशाही की ओर झुकाव हो रहा है? जर्मनी दुनिया को दिखा रहा है कि हिंसा को कितने प्रभावशाली ढंग से उपयोग में लिया जाता है। मानवतावाद को भी आज पाखंड या कमजोर छद्म आवरण में समेटने का प्रयास किया जा रहा है। यह दर्शाता है कि अपनी नग्नता में यह अत्याचार कितना वीभत्स, डरावना व दहला देने वाला है।

क्या यहूदी इस संगठित व शर्मनाक अत्याचार का प्रतिरोध कर पायेंगे? क्या कोई उपाय है कि वे अपना आत्मसम्मान बनाये रखें एवं स्वयं को असहाय, उपेक्षित एवं परित्यक्त महसूस न करें? मैं मानता हूं कि ऐसा उपाय है। कोई भी व्यक्ति जिसकी जीवंत ईश्वर में श्रद्धा है उसे असहाय, उपेक्षित एवं परित्यक्त महसूस नहीं करना चाहिए। यदि सार (तत्त्व) में कहें तो यहूदियों के भगवान जेहोवाह ईसाइयों, मुसलमानों या हिन्दुओं के देवताओं के बनिस्बत अधिक निजी हैं। वह सभी में साझा हैं और किसी भी चित्रण से परे हैं। चूंकि यहूदी में ईश्वर के व्यक्तित्व का सहज गुण है और उसका विश्वास है कि वही उनकी सभी क्रियाओं पर शासन करता है, तो उन्हें असहाय महसूस करने की आवश्यकता ही नहीं है। यदि मैं यहूदी होता और जर्मनी में पैदा होकर वहीं अपनी जीविका उपार्जित कर रहा होता तो मैं यह दावा करता कि जर्मनी ही मेरा घर है। फिर भले ही जर्मनी का सबसे बड़ा व ताकतवर गैर यहूदी मेरे सामने होता, तो मैं उसे चुनौती देता कि या तो वह मुझे गोली मार दे या कालकोठरी में ठूंस दे।

मैं अपना निष्कासन किये जाने से इनकार कर दूंगा और किसी भी तरह के भेदभावपूर्ण व्यवहार के आगे नहीं झुकूंगा। यह सब करने के लिए मैं इस बात का भी इंतजार नहीं करूंगा कि अन्य साथी यहूदी भी इस सिविल नाफरमानी में मेरे साथ आयें। परन्तु मेरा विश्वास है कि अंत में वे मेरा उदाहरण मानने को बाध्य होंगे।

अब कुछ शब्द फिलिस्तीन के यहूदियों के लिए। मुझे इस मामले में कोई भी शंका नहीं है कि वे गलत रास्ते पर हैं। फिलिस्तीन को लेकर बाइबिल वाले विचार जैसा कोई भौगोलिक क्षेत्र अस्तित्व में नहीं है। वह तो उनके हृदय में है। इसके बावजूद यदि वे फिलिस्तीन के भूगोल को राष्ट्रीय घर समझते हैं तो भी ब्रिटिश बंदूक के साये में यहां उनका प्रवेश करना गलत है। कोई भी धार्मिक कार्य संगीन या बम की सहायता से सम्पन्न नहीं कराया जा सकता। यहूदी केवल अरब समुदाय की सद्इच्छा से ही फिलिस्तीन में बस सकते हैं। उन्हें अरब लोगों के हृदय-परिवर्तन का प्रयास करना चाहिए। जो ईश्वर अरब के दिलों पर राज करता है वही यहूदी दिलों पर भी राज कर सकता है। वह पायेंगे कि उनकी धार्मिक आकांक्षाओं को लेकर विश्व जनमत उनके पक्ष में है। यदि वे ब्रिटिश संगीन की मदद ठुकरा देंगे तो अरबों के साथ संबंध ठीक करने के अन्य सैकड़ों तरीके मौजूद हैं। जबकि हो तो यह रहा है कि जिन लोगों ने उनके साथ कुछ भी गलत नहीं किया है, वे उन्हें ब्रिटेन की साझेदारी में लूट रहे हैं। मैं अरब लोगों द्वारा की गयी अतियों का बचाव नहीं कर रहा हूं। मैं चाहता हूं कि वे जिसे अपने देश पर अतिक्रमण मान रहे हैं और यह ठीक भी है, का प्रतिकार अहिंसक तरीके से करते। परन्तु सही या गलत के स्वीकार्य सिद्धांत के चलते और जबरदस्त विषमताओं को सामने देखते हुए अरब प्रतिरोध के खिलाफ भी कुछ नहीं कहा जा सकता।

यहूदी, यह दावा करते हैं कि वे चुनी हुई नस्ल हैं और यदि वे इस धरती पर अपनी स्थिति को न्यायसंगत सिद्ध करवाना चाहते हैं तो उन्हें अपने स्वत्वाधिकार (स्वामित्व) को अहिंसा से चुनना चाहिए। फिलिस्तीन सहित प्रत्येक देश आक्रामकता से नहीं बल्कि प्रेमपूर्वक सेवा के माध्यम से उनका देश है। मेरे एक यहूदी मित्र ने मुझे सिसिल रोथ द्वारा लिखी गयी पुस्तक ''सभ्यता को यहूदियों की देन'' (दि जेविश कॉन्ट्रीब्यूशन टू सिविलाइजेशन) भेजी है। इस पुस्तक में बताया गया है कि यहूदियों ने विश्व को साहित्य, कला, संगीत, नाटक, विज्ञान, औषधी, कृषि आदि क्षेत्रों में समृद्ध करने में कितना योगदान किया है। यदि अपनी इच्छा-पालन करने की छूट होती है तो यहूदी उनके साथ पश्चिम में किये जा रहे अछूतों जैसे व्यवहार को भी नकार सकते हैं। वे उस विश्व के लिए सम्मान का पात्र हो सकते हैं जिसे ईश्वर ने चुना है, बजाए इसके कि वे उन पाशविक लोगों के हाथ में पड़ें, जिनका कि ईश्वर ने परित्याग कर दिया है। अहिंसात्मक गतिविधियों के माध्यम से वे अपने द्वारा किये गये एक से बढ़कर एक योगदानों में और वृद्धि कर सकते हैं। *(सप्रेस)*

'सर्वोदय जगत' के लिए अपील

'सर्वोदय जगत' के प्रकाशन कार्य को और सुदृढ़ एवं सुन्दर करने की दृष्टि से एक कम्प्यूटर, यूपीएस, लेजर प्रिंटर एवं स्कैनर की आवश्यकता है, जिसका अनुमानित खर्च रुपये 50,000/- है।

पत्रिका के सभी सुहृद पाठकों, शुभ-चिन्तकों एवं सहमना संगठनों/संस्थाओं से निवेदन है कि वे हमारे इस कार्य में सहायता करें। हम उनके प्रति अनुग्रहित होंगे। -संपादक

01 सितंबर : विश्व-शांति दिवस

सर्वोदय और विश्व-शांति

❑ जयप्रकाश नारायण

भारत की नीति शांति की है। परंतु जिस पद्धति को अपनाने से शांति रह सकती है और अशांति अथवा युद्ध टाला जा सकता है, जिस पद्धति से राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों का शांतिपूर्वक समाधान हो सकता है, उसकी तरफ देश का ध्यान उतना नहीं जा रहा है, जितना जाना चाहिए था। शासकों की तरफ से या राजनैतिक नेताओं की तरफ से, जिनमें विरोधी पक्षों के नेता भी हैं, बार-बार यही कहा जाता है कि हम शांति चाहते हैं। लेकिन जब तक शांति के लिए निरंतर प्रयास न हों, जब तक ऐसा वातावरण तैयार न किया जाय कि लोगों के हृदय में छोटी-छोटी बातों पर भी हिंसा अथवा अशांति की भावना प्रकट न हो, जब तक सामाजिक जीवन इस प्रकार का न हो कि उसमें शांति की शक्तियां मजबूत बनें, तब तक केवल यह कहते रहना कि भारत शांति चाहता है या भारत का रास्ता शांति का रास्ता है, कोरी 'नारेबाजी' ही है।

सब मिलकर सोचें

आज अगर कोई यह पूछता है कि **विनोबाजी, सर्व सेवा संघ या सर्वोदय-आंदोलन चीन के झगड़े का हल सुझाये, कश्मीर का हल बताये, तो यह वैसी ही बात होगी, जैसी कि अंग्रेजी में कहावत है–कोर्ट-बिफोर द हार्स–अर्थात् घोड़े के आगे गाड़ी। यह सुझाना भी किताबी–एकेडेमिक–रह जायेगा। उसे कोई स्वीकार नहीं करेगा। उसे समझना भी मुश्किल होगा। आसानी से लोग कह देंगे, यह देश के विरुद्ध है। इसलिए भारत अगर शांति का मार्ग अपनाना चाहता है, तो राज्य वालों को भी सोचना चाहिए, राजनैतिक पक्षों के नेताओं को भी सोचना चाहिए और समाज के दूसरे क्षेत्रों–जैसे शिक्षा, व्यापार, संस्कृति–के नेताओं को भी सोचना चाहिए,** अगर वे वास्तव में शांति में विश्वास करते हैं, तो उन्हें सोचना चाहिए कि किस प्रकार से देश में वे शक्तियां बन सकती हैं, जिनसे देश के मानस में शांति हो।

विश्व-शांति का उपाय

सर्वोदय-आंदोलन आर्थिक क्षेत्र के लिए आदर्श उपस्थित करता है और जिन आदर्शों पर समाज का निर्माण करना चाहता है, उसमें सफलता प्राप्त होती है, तो आज जो अंतर्राष्ट्रीय झगड़े व्यापार के हित को लेकर, कच्चे माल या बाजार की प्राप्ति को लेकर या जमीन को लेकर अर्थात् आर्थिक और राजनैतिक प्रश्नों को लेकर पैदा होते हैं, वे पैदा ही न हों। युद्ध के तो कई कारण हैं, परंतु सर्वत्र यह माना गया है कि आर्थिक स्वार्थ एक बहुत बड़ा कारण है। सर्वोदय-समाज में देश के जीवन का आधार दूसरा ही हो जाता है। इसलिए यह आशा की जा सकती है कि अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में भी आर्थिक स्वार्थों को लेकर झगड़े नहीं होंगे। अगर देश में शोषण निर्मूल हो जाता है तो वह देश जो शोषण को बुरा मानता हो, वह दूसरे देश का शोषण करेगा, यह असंभव होगा।

इसी प्रकार युद्ध का एक बहुत बड़ा कारण प्रभुत्व और सत्ता की आकांक्षा है। **दुनिया में हमारा प्रभुत्व फैले, औरों की अपेक्षा हमारी सत्ता मजबूत हो, इस प्रकार की इच्छा चीन आदि देशों में तो देखने में आती है, उसके पीछे जो आर्थिक स्वार्थ की प्रेरणा है, उसमें भी सर्वोदय-विचार के कारण कमी आ सकती है। उसका असर उन देशों पर भी पड़ सकता है, जिनके साथ हमारा संबंध है।** जनता में यदि यह शक्ति पैदा होती है कि वे किसी का अन्याय सहन न करें, अपना शोषण न होने दें, तो फिर बाहर का कोई आक्रमण करेगा, इसका भी भय दूर हो जायेगा। फिर भी यदि कोई आक्रमण करके घर में आता भी है तो उसको हम कभी मानेंगे नहीं, उसके सामने झुकेंगे नहीं, उसके साथ सहकार नहीं करेंगे—ऐसी एक भावना जनता में पहले से बनी रहेगी। इससे भी अंतर्राष्ट्रीय अशांति और युद्ध की संभावनाएं दूर होंगी।

दुनिया का इतिहास देखा जाय तो पता चले कि सदियां बीत गयीं फिर भी कोई हल नहीं निकला। पिछली सदियों में यदि शांति का ऐसा कोई नया रास्ता चुना गया होता, तो उसके शायद चौथाई या दसवें समय में ही इन समस्याओं का हल हो चुका होता। ❑

11 सितंबर : शिक्षक दिवस
सर्वपल्ली राधाकृष्णन्-जयंती

शिक्षा का पुराना ढांचा अशोभनीय

शिक्षक राजनीति में न पड़ें!

❑ विनोबा

शिक्षकों में कम-से-कम तीन गुणों की आवश्यकता रहती है। एक गुण, यह है कि विद्यार्थियों पर उनका प्रेम होना चाहिए, वात्सल्य होना चाहिए, अनुराग होना चाहिए। यह शिक्षकों का बहुत बड़ा गुण है। इसके बिना शिक्षक बन ही नहीं सकता। शिक्षक का दूसरा बड़ा गुण यह है कि उसे नित्य निरंतर अध्ययनशील होना चाहिए। रोज नया-नया अध्ययन जारी रहे और ज्ञान की शुद्धि सतत् होती चली जाय। इस प्रकार से उसे ज्ञान का समुद्र बनना है। उसे ज्ञान की उपासना करनी है।

ये दो गुण शिक्षक में सबसे पहले चाहिए। अगर आप में वात्सल्य है और ज्ञान नहीं है तो आप उत्तम माता बन सकते हैं। माताओं में वात्सल्य भरा होता है, पर ज्ञान होता ही है, ऐसा नहीं। परंतु कुछ माताएं ऐसी भी होती हैं, जिन्हें ज्ञान भी होता है। कपिल महामुनि की माता ऐसी ही हो गयी हैं, जिन्हें कपिल महामुनि ने उपदेश दिया। ऐसी माताएं और भी होंगी, लेकिन यों सामान्यतया माताओं से ज्ञान की अपेक्षा हम नहीं करते, प्रेम और वात्सल्य की करते हैं। आप में अगर वात्सल्य है और ज्ञान नहीं है तो आप प्रवृत्ति-परायण बन सकते हैं। माता के नाते उत्तम प्रवृत्ति आप कर सकते हैं। **अगर आप में प्रेम नहीं है, वात्सल्य नहीं है, तटस्थता है और ज्ञान की उपासना आप करते हैं, तो आप तत्त्वज्ञानी बन सकते हैं, विचारक बन सकते हैं, निवृत्तिनिष्ठ बन सकते हैं। देश को आपका बहुत बड़ा लाभ मिल सकता है, लेकिन आप गुरु नहीं बन सकते। निरंतर चिन्तनशीलता–ज्ञान की वृद्धि प्रतिदिन होती रहे तथा शिष्यों के लिए अत्यन्त वात्सल्य और प्रेम, ये दो गुण तो गुरु में होने ही चाहिए।**

गुरु में एक तीसरा गुण भी होना चाहिए। इन दिनों विद्यार्थियों के दिमाग पर राजनीति का बड़ा आक्रमण है, और ये विद्यार्थी शिक्षकों के हाथ में हैं। यदि शिक्षक ही राजनीति में रंगे हों और राजनीति का वरदहस्त उनके सिर पर पड़ा हो तो समझना चाहिए कि गंगामैया समुद्र की शरण गयीं, लेकिन समुद्र ने उसे स्वीकार नहीं किया। तो जो हालत गंगा की होगी, वही हालत विद्या की होगी। विद्या प्रोफेसरों की, आचार्यों की और शिक्षकों की शरण गयी और उन्होंने उसको स्वीकार नहीं किया। राजनीति के खयाल से ही सोचा। समझना चाहिए कि शिक्षकों का बहुत बड़ा अधिकार है, इसलिए वे सब राजनीति से मुक्त रहें। मान लीजिये कि कोई अस्पताल का सेवक है, जो कांग्रेस या किसी राजनैतिक नेता का दोस्त है। यदि वह पार्टी-पॉलिटिक्स का खयाल करके रोगी की पक्षपातपूर्ण सेवा करता रहेगा, किसी की ज्यादा किसी की कम, तो वह अस्पताल की सेवा के लिए नालायक है। अस्पताल की सेवा करने वाला जो आदमी है, उसे पक्षमुक्त होना चाहिए। यदि वह पक्षयुक्त है तो समझना चाहिए कि उस काम के लिए वह लायक नहीं है। इसी प्रकार न्यायाधीश को लीजिए। क्या कोई न्यायाधीश किसी पक्ष का हो सकता है? न्याय में क्या पक्षपात कर सकता है? नहीं कर सकता। असेम्बली के अध्यक्ष क्या किसी पक्ष का पक्षपात कर सकते हैं? नहीं कर सकते। अगर उन्होंने किया तो गलत माना जायेगा। **यही हैसियत शिक्षकों की है। अगर शिक्षक राजनीति में पड़े हुए हैं, तो समझना चाहिए कि वे कर्ता नहीं हैं, कर्म हैं। उनको करने वाले दूसरे कर्ता हैं, और वे उनके कर्म हैं। उनके हाथ में कर्तृत्व नहीं है।** वह कर्मणि प्रयोग है, कर्तरि प्रयोग नहीं। उस हालत में शिक्षक का व्यवसाय बेकार हो जायेगा। उसका अपना जो स्थान है, वह नहीं रहेगा।

सबके लिए एक-से विद्यालय

प्राचीनकाल में शिक्षा की यह स्थिति नहीं थी। भगवान् कृष्ण की कहानी है। कृष्ण ने देश को कंस से मुक्ति दिलायी। भारत में इतना बड़ा पराक्रम उन्होंने अपने बचपन में ही किया। फिर उसके पिताजी को याद आया कि इसको तालीम नहीं मिली है और इसके पास कोई डिग्री भी नहीं है। इस वास्ते इसे किसी गुरु के पास भेजना चाहिए। तब गुरु के पास तालीम के लिए भेज दिया। गुरु ने सोचा कि 'यह एक महान् अवतार है। इसके हाथ से कंस-मुक्ति हो गयी। इसे तालीम देने के लिए मेरे पास भेजा है। अच्छी बात है। इसे देंगे तालीम।' **ऐसा सोचकर उसे एक गरीब ब्राह्मण विद्यार्थी के क्लास में रखा और दोनों से कहा कि तुम दोनों जंगल से लकड़ी चीरकर लाना। यह ब्राह्मण अत्यन्त दरिद्र था। इसका नाम था सुदामा। कृष्ण था एक महान् राजपुत्र। दोनों को एक ही क्लास में रखा। यह नहीं कि अमीर के लिए पब्लिक स्कूल और गरीब के लिए दूसरा स्कूल। इन दिनों ऐसा होता है कि कुछ लोगों के लिए 'पब्लिक स्कूल' होता है। *'पब्लिक स्कूल' वह, जहां 'पब्लिक' नहीं जा सकती।* वैसा भेद तो उस गुरु ने किया नहीं और दोनों को शरीर-श्रम (फिजिकल लेबर) का बराबर का**

काम दिया। दोनों ने यह काम अच्छी तरह किया और दोनों को गुरु ने छह महीने में सर्टिफिकेट दे दिया। कृष्ण ने कहा : ''तुम्हारा काम बहुत अच्छा रहा, ज्ञानी तो तुम हो ही, केवल मेरा आदर बढ़ाने के लिए तुम आये थे। लेकिन तुमने सेवा का बहुत अच्छा काम किया और जो सेवा का काम करता है, उसे जरूर ज्ञान मिलता है। इसलिए सारा ज्ञान तुम्हारे पास पहुंच चुका। अब मैं तुम्हें विदा करता हूं।'' फिर कृष्ण भगवान गुरु को नमस्कार करने गये। गुरु ने कहा : ''मुझसे कुछ मांग लो।'' कृष्ण ने सोचा 'क्या मांगें'। उन्होंने मांगा : ''मातृहस्तेन भोजनम्''—मुझे मरने तक मता के हाथ से भोजन मिले।

शिक्षा-विभाग शासन से ऊपर

यह सारी कहानी मैंने इसलिए सुनायी कि अपने यहां जो विचार था, उसमें राज्य-सत्ता की सत्ता गुरु पर नहीं थी। गुरु उससे परे था। होना तो यह चाहिए कि जिस तरह न्यायालय शासन से बिलकुल ऊपर है और जहां ठीक लगे वहां शासन के खिलाफ भी निर्णय ले सकता है, उसी तरह शिक्षा-विभाग को भी शासन से ऊपर होना चाहिए। न्याय-विभाग को शासन की तरफ से तनख्वाह मिलती है, लेकिन फिर भी उस पर शासन का अंकुश नहीं है। यह बात न्याय-विभाग के बारे में जिस तरह मान्य हो गयी है, उसी तरह शिक्षा के बारे में भी मान्य होनी चाहिए। तब शिक्षा पनपेगी। अगर यह बात ध्यान में आये कि आजकल हम राजनीतिज्ञों की पकड़ में हैं, तो उस पकड़ से टूटे बिना शिक्षा का कोई मसला हल नहीं होगा।

अशोभनीय ढांचा

पुरानी बात है, 1947 के 15 अगस्त की—स्वातंत्र्य-दिवस की। मैं उन दिनों वर्धा के नजदीक पवनार में रहता था। लोगों ने मुझको व्याख्यान देने के लिए वर्धा बुलाया। मैंने उनसे पूछा कि *''देखो भाई, स्वराज्य मिल गया। तो क्या पुराना झण्डा एक दिन के लिए भी चलेगा?'' वे बोले : ''नहीं चलेगा।'' अगर पुराना झण्डा चले तो उसका अर्थ होगा कि पुराना राज्य ही चल रहा है। जैसे नये राज्य में नया झण्डा होता है, वैसे ही नये राज्य में नयी तालीम चाहिए। अगर पुरानी ही तालीम चली तो समझना चाहिए कि अभी भी पुराना राज्य ही चल रहा है, नया राज्य आया ही नहीं।* गांधीजी ने दूरदृष्टि से 'नयी तालीम' नाम की एक पद्धति सुझायी—और वह गांधीजी ने सुझायी, इसलिए मान्य करनी चाहिए, ऐसी बात नहीं। इसकी जिम्मेदारी हम पर नहीं कि वह बात हमें वैसी-की-वैसी ही माननी चाहिए, न गांधीजी स्वयं वैसा मानते थे कि उनकी चीज वैसी-की-वैसी मानें। अगर मेरे हाथ में राज्य होता—जिसके होने का संभव था नहीं, और अब तो है ही नहीं—लेकिन अगर मेरे हाथ में राज्य होता तो सारे विद्यार्थियों को मैं तीन महीने की छुट्टी देता और कहता कि खेलिए-कूदिए, मजबूत बनिये, खेती-उद्योग का काम कीजिए, स्वराज्य का आनन्द भोगिये, और इस बीच शिक्षा-शास्त्रियों का सम्मेलन कराया जायेगा और उनसे कहा जायेगा कि तीन महीने के अंदर उन्हें हिन्दुस्तान की तालीम का ढांचा तैयार करना होगा। वह तैयार हो जायेगा तो तालीम शुरू हो जायेगी। अगर मेरी चलती तो मैं ऐसा करता। इसके बदले एक पंचवार्षिक, दो पंचवार्षिक, तीन पंचवार्षिक, चार पंचवार्षिक योजनाएं चलीं, और तालीम का ढांचा पुराना-का-पुराना ही रहा। कोई बदल नहीं।

आजकल की सरकार कहती है कि शिक्षा के बारे में बड़े-बड़े प्रश्न हैं। 'एजुकेशन—शिक्षा का 'एक्सप्लोजन' हुआ है। भारत में शिक्षा का बहुत ज्यादा विस्तार हुआ है। इसलिए नयी-नयी समस्याएं हमारे सामने आ खड़ी हैं। तो मैं पूछता हूं : ''क्या अच्छी वस्तु का कहीं 'एक्सप्लोजन' होता है? अगर शिक्षा का 'एक्सप्लोजन' हुआ है, तो मतलब यह है कि शिक्षा कोई बुरी चीज है। आज दरअसल ऐसा है। *आज भारत की हालत ऐसी है कि अगर आप तालीम बढ़ाते नहीं तो लोग बेवकूफ रहेंगे, और अगर तालीम बढाते हैं तो बेकार बनेंगे। अब या तो बेवकूफ रहो, या बेकार बनो। दो में से एक तो बनना ही पड़ेगा। दोनों में से आप क्या मंजूर करेंगे? आप देख लीजिए।'' यह बात मैंने जाकिर साहब के सामने रखी, जब वे पिछली बार हमसे मिलने आये थे। बोले, ''विनोबाजी, आपने कहा, जिनको यह तालीम मिलती है, वे बेकार बनते हैं। वे सिर्फ बेकार नहीं बनते, बेकार भी बनते हैं, बेवकूफ भी बनते हैं।''* मेरी बात में इतना उन्होंने सुधार कर दिया। उन्होंने कहा कि अशिक्षित लोग बेवकूफ हैं और शिक्षित लोग बेवकूफ और बेकार दोनों हैं। इस वास्ते शिक्षा का ढांचा तुरंत बदलना चाहिए था। जो हुआ सो हुआ, अब तो बदलना चाहिए।

जेपी जन्मस्थली राष्ट्रीय स्मारक घोषित हो

जेपी जन्मस्थली निर्माण आंदोलन के तहत जेपी की जन्मस्थली सिताबदियारा में एक राष्ट्रीय संकल्प संगोष्ठी का आयोजन कर राज्य एवं केन्द्र सरकार से जेपी जन्मस्थली को राष्ट्रीय स्मारक की मान्यता देने की मांग की गयी है।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण के पैतृक गांव लाला टोला, सिताबदियारा, सारण (बिहार) में राष्ट्रीय संकल्प संगोष्ठी का आयोजन 26 जून, 2014 को सम्पन्न हुआ। सर्व सेवा संघ के राष्ट्रीय मंत्री विजय कुमार मुख्य अतिथि तथा जिला सर्वोदय मंडल, कैमूर के अध्यक्ष कालिका सिंह विशेष अतिथि आमंत्रित थे।

जेपी जन्मस्थली को राष्ट्रीय स्मारक के रूप में मान्यता देने, स्मारक, अतिथि गृह तथा पुस्तकालय निर्माण हेतु अधिग्रहण की जाने वाली भूमि का किसानों को यथाशीघ्र मुआवजा देने, जेपी जन्मस्थली के समुचित विकास तथा निर्माण हेतु 200 करोड़ की राशि मंजूर के प्रस्ताव पारित किये गये।

—ओमप्रकाश गिरी

11 सितंबर, विनोबा-जयंती

अध्यात्म-सौरभ

समन्वय पर प्रहार मत होने दीजिए

❑ विनोबा

सर्वोदय की दृष्टि

आप सब लोग जानते हैं कि हम सर्वोदय के विचारक कहलाते हैं और भूदान के काम में लगे हुए हैं और उसी चिन्तन में हमारा प्रतिदिन का समय जाता है। इसलिए पूछा जायेगा कि इस प्रश्न को हम क्यों इतना महत्त्व दे रहे हैं और तीन-तीन व्याख्यान क्यों दे रहे हैं। इसका उत्तर यह है कि यह विषय सर्वोदय के लिए ही नहीं, बल्कि धर्म-विचार के लिए भी बहुत महत्त्व का है। इसका ठीक निर्णय हमारे मन में नहीं हो; तो केवल धर्म ही नहीं; बल्कि सर्वोदय ही टूट जायेगा। **मान लीजिए कि हम देशाभिमान की बात करते हैं, तो वह देश-प्रेम बहुत व्यापक चीज जरूर है, पर मानवता की दृष्टि से वह भी छोटी, संकुचित होती है। पर जिसे हम धर्म-भावना कहते हैं, वह मानवता से छोटी चीज नहीं है, मानवता से बड़ी चीज है। धर्म के नाम पर जब हम मानवता से भी छोटे बन जाते हैं, तो हम धर्म को भी संकुचित करते हैं और धर्म की जो मुख्य चीज है, वह छोड़ते हैं। धार्मिक पुरुष की धर्म-भावना में न सिर्फ मानव के लिए ही प्रेम है, असंकोच होता है; बल्कि प्राणीमात्र के लिए प्रेम होता है और असंकोच होता है।** अपने-अपने खयाल से और मन के संतोष के लिए मनुष्य अलग-अलग उपासना करते हैं। इस तरह उपासना अलग-अलग बन जाती है। उन उपसनाओं के मूल में जो भक्ति है, वह सबसे बड़ी चीज है, मानवता से भी व्यापक है। **लोग हमसे पूछते हैं कि क्या सर्वोदय-समाज में कोई मुसलमान नहीं रहेंगे, हिन्दू नहीं रहेंगे, ख्रिस्ती नहीं रहेंगे, तो हम जवाब देते हैं कि ये सारे-के-सारे रहेंगे और ये सब सर्वोदय के अंग हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि हिन्दू-मुस्लिम या ख्रिस्ती धर्म के नाम पर जो गलत धारणाएं चल पड़ीं, वे भी इसमें हैं। वे तो इसमें नहीं रहेंगी, बल्कि भिन्न-भिन्न उपासना की जो प्रणालियां हैं और जो व्यापक भावना है, वह सर्वोदय में अमान्य नहीं है। लेकिन सर्वोदय में यह नहीं हो सकेगा कि कोई उपासना करने वाला दूसरे किसी उपासना-स्थान में, मंदिर में उपासना करने के लिए जाना चाहता है, तो उसे रोका जाय। चाहे वह भिन्न उपासना क्यों न करता हो, उसे रोकना नहीं चाहिए, चाहे हिन्दू का मंदिर हो, चाहे मुसलमान का मंदिर हो, चाहे ख्रिस्तियों का मंदिर हो या दूसरे किसी के मंदिर हों। जो उपासना के लिए एक मंदिर में जाना चाहता है, वह उपासना के लिए दूसरे भी किसी मंदिर में न जाय, ऐसा नहीं कह सकते।** जैसी रुचि होगी, वैसे लोग जायेंगे। इस तरह से भिन्न-भिन्न उपासना के मंदिरों में सर्वोदय-समाज में लोग जायेंगे और सर्वोदय-समाज में यह किसी को लाभ नहीं होगा कि कोई फलाने मंदिर में ही वह जाय। एक मंदिर में जाकर प्रेम से उपासना करने वाला दूसरे मंदिर में भी जाना चाहता है, प्रेम से उपासना में योग देना चाहता है, प्रेम से वह उपासना को जानना चाहता है, तो उसे रोकना अत्यन्त गलत चीज है।

उपासना के बंधन नहीं

आप लोगों ने रामकृष्ण परमहंस का नाम जरूर सुना होगा और आप जानते हैं कि पिछले सौ साल में जो महान् पुरुष हिन्दू धर्म में पैदा हुए थे, उनमें उनकी अग्रणी पुरुषों में गिनती होती है। उन्होंने सब धर्म की उपासनाओं का अध्ययन किया था, वे उन उपासनाओं में जो अनुभूतियां आयीं उनका चिन्तन-मनन वे करते थे। **मैं अपने लिए भी यही बात कहता हूं कि यद्यपि अधिक-से-अधिक अध्ययन हिन्दू धर्म का मैंने किया है, फिर भी दूसरे सब धर्मों का भी प्रेम से, गहराई से अध्ययन मैंने किया है। उनकी विशेषताओं को देखने की कोशिश मैंने की है और उसमें जो सार है, उसको ग्रहण किया है। यह सब रामकृष्ण परमहंस ने किया था और मेरे जीवन में भी जो बात है, और जब हम लोगों ने वह गलत नहीं किया है, तो फिर समझने की जरूरत है कि किसी मनुष्य की उपासना का अध्ययन, उसका अनुभव और लाभ लेने से रोकना भी गलत है।** हम सब नहीं कह सकेंगे कि तुम एक दफा तय कर लो कि तुम्हें राम की उपासना करनी है या कृष्ण का नाम लेना है! इस्लाम का नाम लेना है या ख्रिस्त के पीछे जाना है! यह तय कर लो, फिर दूसरे मंदिर में मत जाओ; इस तरह से कहना उपासना को मानवता से संकुचित करना है और उपासना मानवता से छोटी चीज नहीं है। मानवता के पेट में यह नहीं समा सकती, बल्कि मानवता से वह बहुत बड़ी चीज है, कम नहीं। इस दृष्टि से यह सवाल बहुत अहम हो जाता है, महत्त्व का हो जाता है और हम चाहते हैं कि इस पर लोग बहुत गहराई से सोचें।

अभी उड़ीसा में प्रवेश करते ही एक ख्रिस्ती भाई ने हमको प्रेम से न्यू टेस्टामेंट भेंट किया। न्यू टेस्टामेंट मैं कई दफा पढ़ चुका हूं, परंतु उन्होंने प्रेम से दिया, इसलिए उसको फिर से पढ़ गया और पढ़ने का मतलब यह तो नहीं होता कि उसमें जो अच्छी चीज है, उसका ग्रहण नहीं करना या उस उपासना-पद्धति में जो सार है, उसका लाभ नहीं उठाना। यह ठीक है कि जिस उपासना में हम पले, उसका परिणाम हमारे ऊपर रहता है, उसको मिटाना नहीं चाहिए। पर दूसरी

उपासना का भी लाभ नहीं उठाना चाहिए, यह बात गलत है। उपासना को संकुचित नहीं बनाना चाहिए। उससे उसमें न्यूनता आ जाती है। कुछ लोग यह कहते हुए सुनायी पड़ते हैं कि हरिजनों को तो हम मंदिर में प्रवेश देने को राजी हो गये, अब ख्रिस्तियों, मुसलमानों को क्यों आने देंगे? तो हमको समझना चाहिए कि उपासना में इस तरह की मर्यादा नहीं होनी चाहिए। उपासना एक-दूसरे के लिए परितोषक होती है। एक ही मनुष्य बाप के नाते जीवन में काम करता है, भाई के नाते काम करता है, बेटे के नाते भी जीवन में काम करता है। इस तरह से विविध अनुभव जिनको है, वह परमेश्वर को भी बाप के नाते समझ कर उपासना कर सकता है, भाई के नाते समझकर उपासना कर सकता है, बेटा समझ कर उपासना कर सकता है; इसलिए वह परमेश्वर की उपासना पिता के रूप में, माता के रूप में कर सकता है।

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।"

अब उसको यह नहीं कहा जा सकता कि यह तो तुम परमेश्वर को पिता कहो या तो माता कहो या तो बेटा कहो। **परमेश्वर तीनों एक साथ कैसे हो सकता है, ऐसा कहें, तो जब एक सामान्य मनुष्य भी बाप, बेटा और भाई हो सकता है, तो परमेश्वर वैसा क्यों नहीं हो सकता? इस तरह से परमेश्वर की अनेक तरह से उपासना हो सकती है। इसलिए समन्वय की कल्पना को सर्वोत्तम कल्पना के तौर पर सब धर्म मान्य करते हैं। इस दृष्टि से हम जब इस घटना के विषय में सोचते हैं, तो हम समझ सकेंगे कि इससे समन्वय पर ही प्रहार होता है। और जहां समन्वय पर प्रहार होता है, वहां सब तरह की उपासनाओं पर भी प्रहार होता है।**

यह विषय दो दिन तक एक-दूसरे ढंग से आपके सामने मैंने रखा था, आज एक तीसरे ढंग से रखा है। इस तरह से यहां एक विषय परिपूर्ण होता है। ❑

(जगन्नाथपुरी, 23 मार्च, 1955 का सायं-प्रार्थना-प्रवचन)

आमुख

सर्व-धर्म-स्मरण

नाम-माला

❑ विनोबा

ॐ तत् सत् श्री नारायण तू, पुरुषोत्तम गुरु तू।
सिद्ध बुद्ध तू, स्कन्द विनायक, सविता पावक तू।।
ब्रह्म मज्द तू, यह्व शक्ति तू, ईशु-पिता प्रभु तू।
रुद्र विष्णु तू, राम कृष्ण तू, रहीम ताओ तू।।
वासुदेव गो-विश्वरूप तू, चिदानन्द हरि तू।
अद्वितीय तू, अकाल निर्भय, आत्मलिंग शिव तू।।

इन तीन श्लोकों में छत्तीस नामों की एक नामावली है। यह एक नयी चीज है। इसका आरम्भ जान लेना चिन्तन के लिए लाभदायी है।

मैं बरसों से भिन्न-भिन्न संस्कृतियों की उपासना करता रहा हूं। जिस समय जिस धर्म की उपासना की, उस समय उस-उस धर्म के खास-खास नामों का चिन्तन करता रहा। कुरान में अल्लाह के अनेक नाम आते हैं, उन सबमें गुणवाचक रहमान या रहीम मुख्य है। वैसे ही चीनी तत्त्वज्ञान का मंथन करने पर ताओ शब्द निकलता है। इस तरह कई धर्मों की और संस्कृतियों की उपासना समय-समय पर मेरे मन में चलती रही। लेकिन इस वक्त जब मैं हृषीकेश से हरिद्वार जा रहा था, तब रास्ते में काली कमलीवालों ने मुझे चन्दन की एक मणिमाला भेंट दी। अकसर इस तरह की माला का उपयोग मैंने बहुत कम किया है। **तकली और चरखे ने मुझे माला का काम दिया है। उससे मेरी एकाग्रता तुरंत हो जाती है। फिर भी जब उन्होंने माला दे दी, तो रात को सोते वक्त मैं वह अपने पास रख लेता था। साथ-साथ कुछ चिन्तन भी चलता रहा। उसके तीन श्लोक बन गये। परंतु प्रभु के गुण अनन्त हैं, इसलिए उसके नाम भी अनन्त हैं।** भक्त-जनों को जो प्रिय ही हैं, उनमें से कुछ नाम चुन लिये हैं। उसकी खूबी यह है कि उसमें सभी धर्मों का समावेश हुआ है। हिन्दू-धर्म के बहुत सारे पंथों का निर्देश भी हो गया है। सब मिलकर नाम-स्मरण का एक सुश्लिष्ट भजन बना है। इस नाम-माला से मुझे समाधान हुआ है और यह अब मेरी सायं-प्रातरुपासना का भाग बन गया है।

ॐ तत् सत्—इन तीन शब्दों में वेदों का सार आता है। भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय में उसका जिक्र आया है।

ॐ तत् सत् के बाद श्री पद है। श्री शब्द लक्ष्मी का वाचक है, यानी श्रम का प्रतीक है। श्रम से होने वाली पैदावार श्री है। सृष्टि में सर्वत्र जो शोभा दिखायी देती है, उस सबका सूचन श्री से मिलता है। सत् श्री एक कर दें तो सिखों का उपास्य मंत्र बन जाता है।

नारायण—नर समुदाय का देवता है। वह सर्वभूतान्तर्यामी है। परन्तु विशेषतया मनुष्यों के लिए प्रस्तुत किया गया है।

पुरुषोत्तम—सब पुरुषों में उत्तम, रागद्वेषरहित, जो आदर्श गीता के पन्द्रहवें अध्याय के अन्त में बताया गया है।

गुरु—पंथप्रवर्तक। इसलाम, ईसाई धर्म, सिख धर्म—सब गुरुपंथ हैं। क्योंकि ये धर्म विशिष्ट गुरु के नाम पर प्रचलित हुए हैं। हिन्दू-धर्म में भी गुरु-प्रथा है, यद्यपि हिन्दू-धर्म गुरु-पंथ नहीं कहा जायेगा। गुरु दत्तात्रेय का एक विशिष्ट सम्प्रदाय है। उसका भी स्मरण इसमें संगृहीत है।

नारायण, पुरुषोत्तम, गुरु—ये तीनों एकत्र करने से एक महान् आदर्श चिन्तन के लिए मिलता है।

सिद्ध, बुद्ध—जो जान गया और जो जाग गया। इन दो शब्दों से यथाक्रम जैन और बौद्ध आदर्शों का स्मरण हो जाता है।

स्कन्द—दोष-स्कन्दन, दोष-निर्दलन करनेवाला देवता, ब्रह्मचारी, कुमार, प्रसिद्ध देवसेनानी।

विनायक—गणपति, समुदाय का देवता। किसी भी काम के आरम्भ में विनायक-

स्मरण यानी गणपति-स्मरण किया जाता है। सबका जो विशेष नायक, वह विनायक।

सविता पावक—प्रेरणा देनेवाला और पावन करनेवाला। सविता से सूर्य का स्मरण होता है, पावक से अग्नि का। सविता परमेश्वर की कृपा है। अग्नि के निर्माण में हमारा भी हाथ है। पारसियों में अग्नि की और वैदिकों में सूर्य और अग्नि दोनों की उपासना चलती है।

ब्रह्म—बृहत्, व्यापक तत्त्व, निर्गुण, निराकार, जिसमें से यह सारी सृष्टि अंकुरित होती है, जिसके आधार पर रहती है और जिसमें लीन होती है।

मज्द—अहुर मज्द। अहुर यानी असुर। पारसियों में परमेश्वर की संज्ञा। वेदों में असुर का अर्थ परमेश्वर होता है। मज्द यानी महान्।

यह्व—यानी जुहोवा। यहूदियों का आराध्य देवता। वह भी मूलतः वैदिक शब्द है।

शक्ति—परमेश्वर की प्रेम-स्वरूप में उपासना करनेवाले 'भक्त' कहलाते हैं। वैसे समाज-रचना की चिन्ता करनेवाले 'शाक्त' कहलाते हैं, जो ईश्वर की शक्ति-स्वरूप में उपासना करते हैं।

ईशु-पिता—परमेश्वर जगत्पिता तो है ही, लेकिन विशेष अर्थ में वे भक्त-पिता हैं। भक्तों के प्रतिनिधि के तौर पर ईशु का नाम लिया जाता है। ईशु-पिता में भक्त और भगवान् दोनों का स्मरण होता है।

प्रभु—प्रभावशाली परमेश्वर, लोकस्वामी।

रुद्र—संसाररूपी पाशों में जकड़कर रुलानेवाला और कठिन साधना के बाद संसार-पाश से छुड़ानेवाला। संहारदेवता भी यह है।

विष्णु—विश्व का पालन करनेवाला विश्वव्यापक भगवान्।

रुद्र-विष्णु—शैव और वैष्णव भक्तों के उपास्य संकेत हैं।

राम-कृष्ण—सत्य और प्रेम के प्रतीक। राम-कृष्ण की सम्मिलित उपासना हमारे यहां सारे देश में चलती ही है।

रहीम—जो अत्यन्त दयामय है। शान्ति-परायण इसलाम का स्मरण। अल्लाह का गुण-विशेषण।

ताओ—चीनी सन्त लाओत्से का परम मंत्र। ताओ यानी परमात्मा, ज्ञान-स्वरूप। मूल तनु धातु पर से हो सकता है। तनु पर से ताय और तायी शब्द संस्कृत-साहित्य में आते हैं। गौडपाद की कारिका में उसका उल्लेख है। उससे मिलता-जुलता यह चीनी शब्द है। चीनी लोगों की संस्कृति का सूचक यह शब्द है।

वासुदेव—गीता में वासुदेव भगवान् के लिए प्रयुक्त है। वासुदेवः सर्वम्, ईशावास्यमिदं सर्वम्, ये वचन प्रसिद्ध हैं। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय—यह द्वादशाक्षरी वेदमंत्र वैष्णवों का प्राण है।

गो-विश्वरूप—यानी गोरूप और विश्वरूप।

विश्वरूप का दर्शन वेद, उपनिषद् और गीता में मिलता है। विश्व-रूप कहने पर गोरूप कहने के लिए अवकाश नहीं रहता है, क्योंकि विश्वरूप में सब कुछ आ जाता है। फिर भी गो यानी वाणी, अर्थात् विश्व-प्रकाशक शक्ति का विश्वरूप से पृथक स्मरण अभीष्ट है। गो शब्द गोरक्षणी उपासना भी सूचित करेगा।

चिदानन्द—चैतन्य और आनन्द आत्मस्वरूप-दर्शन के शब्द हैं। सत् जोड़ने से सच्चिदानन्द हो जाता है। सत् का संग्रह पहले ही ॐ तत् सत् में आ गया है।

अद्वितीय—एकं सत्। एकमेवाद्वितीयम्। ला इलाह इल्लल्लाह।

अकाल—जो कालातीत है, काल का भी काल है। सत् श्री अकाल—यह सिखों का उद्‌घोष है।

निर्भय—निर्भयता सद्‌गुण-सेना का सेनापति है। गीता ने दैवी सम्पत् के गुणों में इसे प्रथम स्थान दिया है। 'गीते, भवद्वेषिणीम्' का मैंने मराठी में 'भयद्वेषिणी' किया है। भक्तों के लिए काल-भैरव भी अकाल-निर्भय बन जाते हैं।

आत्मलिंग—आत्मा ही जिसकी पहचान है। आत्मा से बढ़कर ईश्वर की कोई निशानी हमारे लिए हो नहीं सकती।

लिंग शब्द से शैवों (लिंगायतों) की विशिष्ट उपासना का अनायास स्मरण होता है।

शिव—परम मंगल। नमः शंभवाय च मयस्कराय च। नमः शिवाय च शिवतराय च।

('नाम-माला' से) ❑

बाबा का संदेश

बहनों से...

गृहस्थाश्रम में मनुष्य को प्रेम की तालीम मिलती है, प्रेम का अभ्यास होता है। परिवार में प्रेम का प्रयोग किया, अभ्यास किया उसमें सफलता प्राप्त की, अब उस प्रेम का विस्तार गांव तक, समाज तक करना चाहिए। यदि प्रेम परिवार में ही सीमित हो जायेगा तो उस प्रेम का स्वरूप बदल जायेगा, वह कामवासना में परिवर्तित हो जायेगा। सब पापों का मूल कामवासना में है।

भूदान यज्ञ आरोहण में स्त्रियों ने जो हिस्सा लिया है, वह मुझे तो अद्‌भुत ही मालूम होता है। मैं कहता हूं कि आज जो गलत मूल्य रूढ़ हैं, उन्हें बहनें ही बदल सकती हैं। इसलिए बहनों को आध्यात्मिक अधिकारों के बारे में अच्छी तरह सोचना चाहिए और बगावत करके खड़े होना चाहिए।

तरुणों से...

तरुण शब्द का अर्थ क्या है? उसका अर्थ इस शब्द से ही प्रकट है। शब्द मुझसे बातें करते हैं। वे मुझे अपनी खूबी बता देते हैं। तरुण शब्द स्वयं कहता है कि आप समाज के तारक हैं। तरुण यानी तारक। तारण करने वाला इसलिए तरुण पर बहुत कुछ अवलंबित है। मुझे तो तरुणों से बड़ी आशा है। मैं आपसे क्या अपेक्षा करता हूं? मुझे आपसे कहना चाहिए कि मुझे आपसे क्रांति से कम अपेक्षा नहीं है। हमें सार्वभौम-क्रांति की जरूरत है। जीवन के समस्त क्षेत्र में हम क्रांति करना चाहते हैं। इसीलिए मुझे आपसे सार्वभौम और जीवनव्यापी क्रांति की आशा है। आज के नेताओं ने क्रांति का मार्ग बता दिया है। फिर भी मैं मानता हूं कि यदि क्रांति आयेगी तो वह युवकों और विद्यार्थियों द्वारा ही आयेगी। तरुणों का यह लक्षण है कि वे नये-नये विचारों को जन्म देते हैं और वीरता के साथ उसपर अमल करते हैं। इसलिए मैं मानता हूं कि आपको नये विचारों का साथ देना चाहिए और प्रत्यक्ष क्रांति कर दिखाना चाहिए। ❑

10 सितंबर : धीरेनदा जयंती

मेरे साथी मुझे 'पागल' कहते हैं

❑ धीरेन्द्र मजूमदार

''स्वधर्म-निष्ठा से सिद्धि-लाभ होता है। पंडित जवाहरलाल नेहरू हवाई-जहाज पर चलकर, सिगरेट फूंकते हुए भी लाखों का जयजयकार पा लेंगे, किंतु विनोबाजी के हाथ में एक बीड़ी देखकर जनता उनसे नफरत करने लगेगी। जवाहरलालजी अगर विनोबाजी की नकल करेंगे, तो उन्हें सिद्धि न मिलेगी और विनोबाजी भी जवाहरलालजी की नकल कर आगे न बढ़ सकेंगे। अपने-अपने स्वधर्म में निष्ठ होने के कारण दोनों ही महान् हैं।''

पिछले तीस साल से मेरे साथी मुझे हमेशा 'पागल' कहते रहे हैं। पागल उसे कहते हैं, जो सब लोगों से भिन्न कुछ कहता रहे। तो, मैं हमेशा पागलपन की ही बात करता हूं, फिर भी आप मेरी बात सुनते हैं। आप भी क्या करें? आपने मुझसे भी एक बड़े पागल को अपना नेता जो बना रखा है। उसने तो ऐसी बात कह डाली, जो इतिहास में कहीं न थी। उसने इतना बड़ा आंदोलन चलाने के लिए—'तंत्र-मुक्ति' और 'निधि-मुक्ति' की बात की। क्या आपने इतिहास में कभी सुना कि किसी क्रांतिकारी नेता ने अपने आंदोलन के दौरान में ही अपने संगठन को विघटित कर दिया?

स्वधर्म-निष्ठा से ही सिद्धि

'ये तंत्र-मुक्ति और निधि-मुक्ति क्यों और क्या?' इसे साफ-साफ समझ लेने की आवश्यकता है। जब तक हम सब इसकी आवश्यकता तथा स्वरूप के बारे में स्पष्ट नहीं समझ लेते, तब तक इस आंदोलन में वेग नहीं आ सकता। हर चीज का एक स्वभाव और स्वधर्म होता है। स्वधर्म-निष्ठा से सिद्धि-लाभ होता है। पंडित जवाहरलाल नेहरू हवाई-जहाज पर चलकर, सिगरेट फूंकते हुए भी लाखों का जयजयकार पा लेंगे, किंतु विनोबाजी के हाथ में एक बीड़ी देखकर जनता उनसे नफरत करने लगेगी। जवाहरलालजी अगर विनोबाजी की नकल करेंगे, तो उन्हें सिद्धि न मिलेगी और विनोबाजी भी जवाहरलालजी की नकल कर आगे न बढ़ सकेंगे। अपने-अपने स्वधर्म में निष्ठ होने के कारण दोनों ही महान् हैं। इसी तरह स्वतंत्रता आंदोलन के स्वधर्म और स्वभाव के अनुसार आज की भूदान-क्रांति नहीं चल सकती और न वही जन-कल्याण कार्य के लिए स्वधर्म और स्वभाव के अनुसार चल सकता है। उसे अपने ही स्वधर्म के अनुसार चलना होगा।

तंत्र-मुक्ति तंत्र-मुक्त साधनों से ही संभव

वस्तुतः गांधीजी ने दुनिया को कोई नये लक्ष्य का संदेश नहीं दिया। उन्होंने जो नयी बात कही, वह यही थी कि साध्य और साधन में समता हो। क्रांति की प्रक्रिया में यही उनकी सबसे बड़ी देन है। साधन और साध्य की एकरूपता न हुई, तो सिद्धि का भास भले ही हो जाय, पर गांधीजी की दृष्टि में वास्तविक सिद्धि-लाभ नहीं हो सकता। अतएव सबसे पहले हमें अपने साध्य को अच्छी तरह समझ लेना होगा।

आज केवल विनोबा ही नहीं, हम-आप सभी सर्वोदय-सेवक कहते हैं कि हमें शासन-मुक्त, शोषण-हीन और श्रेणीहीन समाज कायम करना है। हम कहते हैं कि कांचन-मुक्ति के सिवा शासन-मुक्ति नहीं हो सकती। वस्तुतः 'शासन-मुक्त समाज' से हम कोई उच्छृंखल या अव्यवस्थित समाज नहीं समझते। शासन-मुक्त समाज भी पूर्ण रूप से व्यवस्थित समाज ही होगा। निस्संदेह ऐसा समाज 'संचालित' न होकर 'सहकारी' होगा। यह तभी संभव होगा, जब समाज के मूलकर्मी यानी उत्पादक स्वावलम्बी हों। क्योंकि उनके स्वावलम्बी हुए बिना समाज में एक 'व्यवस्थापक-वर्ग' की आवश्यकता रह ही जायेगी, जिसकी परिणति से शासन संचालित ही रह जायेगा।

'स्वावलम्बन' का मतलब जैसा कि हम सब समझते हैं, वस्त्र-स्वावलंबन, अन्न-स्वावलंबन, सब्जी या दूध स्वावलंबन ही नहीं है। ये सब बातें तो उनमें हों ही। लेकिन वास्तविक स्वावलंबन तब हो सकेगा, जब मूल उत्पादक-वर्ग का नेतृत्व-स्वावलंबन और व्यवस्था-स्वावलंबन सिद्ध होगा। नेतृत्व-स्वावलंबन सधे बिना शासन-मुक्ति की सिद्धि नहीं हो सकती। केन्द्रीय-तंत्र तथा संचित निधि-संचालित कार्यक्रम में से यह नेतृत्व-स्वावलंबन निकल नहीं सकता।

आंदोलन का साधन उसकी प्रक्रिया ही है। अगर आंदोलन ही गण-सेवकत्व के नेतृत्व तथा जनता द्वारा पोषित न होगा, तो उसके द्वारा केंद्रीय शासन या 'तंत्र' का कदापि अंत न हो सकेगा। अगर समाज को तंत्र-मुक्त करना है, तो उसका साधन भी तंत्र-मुक्त आंदोलन ही होगा। यही कारण है कि विनोबाजी ने भू-क्रांति-आंदोलन को तंत्र-मुक्त कर दिया है।

'निधि-मुक्ति' का अर्थ

संचित निधि द्वारा भी अगर आंदोलन चलेगा, तो भी वह तंत्र-मुक्त न हो सकेगा, क्योंकि उस निधि के संचालन के लिए एक संचालक-मंडल की आवश्यकता रहेगी ही। **केंद्रीय संचित निधि नहीं, बल्कि जिलेवार या क्षेत्रवार विकेंद्रित संचित निधि से भी संचालित रहते यह आंदोलन तंत्र-मुक्त न हो सकेगा, क्योंकि छोटी सत्ता या बड़ी सत्ता वास्तव में सत्ता ही तो है। अतएव निधि-मुक्ति का मतलब यह नहीं कि हम केवल गांधी-स्मारक-निधि से ही मुक्त हो जायँ। बल्कि हमें सर्व-सेवा-संघ की संचित निधि, गांधी-आश्रम की संचित निधि या इस तरह की और भी दूसरी संस्थाओं की संचित निधियों का भी आधार छोड़ना होगा।** हमारा आंदोलन तभी स्वधर्मनिष्ठ होगा, जब हम जनता की चालू सहायता से ही और किसी संस्था की ओर न देखकर किसी अनुभवी

व्यक्ति के मार्ग-दर्शन में चलें। इसीको विनोबाजी ने 'चेतन से चेतन का संबंध' कहा है।

भूदान-समितियों का विघटन

इसी सिलसिले में कल जो भूदान-समिति की बैठक में निर्णय हुआ कि 'जिलों में समिति की ओर से दान-पत्र आदि के कानूनी काम करने के लिए एक सेक्रेटरी की नियुक्ति की जाय, उसके बारे में मैं कुछ कह देना चाहता हूं। समिति के इस निर्णय से कुछ साथियों को भ्रम पैदा हुआ होगा कि इस प्रकार पुरानी भूदान-समितियों का पुनर्जन्म हो रहा है। आंदोलन तो हर प्रकार से तंत्र-मुक्त रहकर निष्ठावान् लोक-सेवकों और जिला-निवेदकों के प्रचार-पर्यटन, संगठन आदि से तथा जनता की प्रेरणा और चेष्टा के बल पर चलेगा। समिति का काम तो इस आंदोलन के परिणामस्वरूप जो भूमिदान या ग्रामदान होगा, उसे कानूनबद्ध करना तथा उन भूमि और ग्रामों के निर्माण में मदद करना होगा।

क्रांति-वहन संस्था के स्वभाव-विरुद्ध

वस्तुतः भूदान-समिति भी विभिन्न तंत्रबद्ध संस्थाओं की जैसी एक संस्था ही होगी। आज जितनी संस्थाएं काम कर रही हैं, असलियत में वे इस क्रांति की वाहक नहीं हो सकतीं। वे सहायक मात्र हो सकती हैं। संस्थाओं के बारे में मैं अकसर एक उदाहरण दिया करता हूं। **रिक्शा, टांगा, मोटर आदि अनेक प्रकार की सवारियां होती हैं। सवारियां बाजार नहीं करतीं, वह तो आदमी ही करता है। आदमी पैदल जाकर बाजार कर सकता है और चाहे तो किसी सवारी का भी इस्तेमाल कर सकता है। इसी तरह लोक-सेवक ही क्रांति का काम चलायेंगे। संस्थाएं सवारियों जैसी अपनी-अपनी जगह पर खड़ी रहेंगी। लोक-सेवक उन्हें क्रांति के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं, उनकी सहायता ले सकते हैं।** लेकिन एक बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए। आप पैदल चलकर बाजार करना चाहें, तो कर सकते हैं। लेकिन रिक्शा आदि किसी सवारी पर बैठना चाहें, तो उसके चालक द्वारा मांग हुआ किराया आपको देना होगा। आप बिना टिकट उस पर बैठ नहीं सकते। हमारे कार्यकर्ता कभी-कभी संस्थाओं के बारे में शिकायत करते हैं। उनकी शिकायत इसलिए होती है कि वे बिना टिकट सवार होना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि संस्था की कोई शर्त न हो और उसे वे इस्तेमाल करें। आखिर संस्थाएं तंत्र-मुक्त नहीं होतीं। अगर वे ऐसी होतीं, तो वे 'संस्था' या 'संघ' ही न रह जातीं। उन्हें तंत्रबद्ध या नियम और कानून से ही चलना होगा। उनका स्वभाव और स्वधर्म वही है। लेकिन इस आंदोलन के स्वरूप में सेवक सार्वभौम और संस्था सेविका मात्र है। सेविका का मतलब यह नहीं कि वह गुलाम हो जाय। वह भी अपनी शर्त पर ही सेवा करेगी।

इस प्रकार सर्व-सेवा-संघ, गांधी-स्मारक-निधि, गांधी-आश्रम, भूदान-समिति आदि संस्थाएं अपने-अपने स्वभाव और स्वधर्म की मर्यादा के अनुरूप ही इस आंदोलन की सहायिका होंगी। इसकी मुख्य जिम्मेदारी तो तंत्र-मुक्त तथा निधि-मुक्त निष्ठावान् सत्याग्रही लोक-सेवक पर ही है।

स्वाभाविक नेतृत्व की ओर बढें

कल चर्चा के दौरान एक भाई ने कहा : 'हमारी परेशानी यह है कि इस प्रदेश में कोई अनुभवी महापुरुष पूरा समय भूदान में नहीं देते।' किंतु आज जिन्हें अनुभवी महापुरुष मानते हैं, वे आज से पहले अनुभवी नहीं, आप जैसे ही साधारण कार्यकर्ता थे। उनके जिम्मे दूसरी संस्थाएं हैं। तो वे भी आज इस क्रांति के 'वाहक' न होकर 'सहायक' हो सकते हैं। **विनोबाजी कहते हैं कि यह युग गण-सेवकों का है। आप सब जो आज कम अनुभवी हैं, वे ही काम करते हुए अनुभवी हो जायेंगे और उन्हींमें से एक-दूसरे का मार्गदर्शन करेंगे। धीरे-धीरे दो-चार व्यक्ति जब विशेष अनुभवी हो जायेंगे, तो सहज और स्वाभाविक नेतृत्व का निर्माण होगा।** तब तक हम सब विभिन्न संस्थाओं के अनुभवी नेता लोग, जो हमारे आंदोलन के शुभाकांक्षी तथा सहायक हैं, उनकी सहायता तथा सलाह लेते हुए आगे बढ़ेंगे। ❑

सर्व सेवा संघ ने मनाया 68वां स्वतंत्रता दिवस

15 अगस्त को सर्व सेवा संघ के वरिष्ठ कार्यकर्ता भाई महेन्द्र कुमार ने साधना केन्द्र परिसर, राजघाट, वाराणसी में ध्वजारोहण किया तथा बड़े मनोयोग से स्वतंत्रता दिवस एवं स्वतंत्रता सेनानियों को याद किया।

इस अवसर पर डॉ. मुनीजा खान, सर्व सेवा संघ डाकघर के उपडाकपाल श्री शुक्ल, ससेसं वाराणसी परिसर के संयोजक शिवविजय सिंह, आवासीय परिसर के आवासीगण तथा बूढ़े-बुजुर्ग व बच्चे उपस्थित थे। वक्ताओं ने इस अवसर पर आजादी के महत्त्व पर प्रकाश डाला तथा सबों के बीच मिठाइयां वितरित की गयीं।

सर्व सेवा संघ-वाराणसी की गतिविधियां बढ़ीं

सर्व सेवा संघ की पत्रिका 'सर्वोदय जगत' के कार्यालय का शुभारम्भ हो गया है।

गोशाला– *माह अगस्त से वर्षों से बंद गोशाला में गाय-पालन प्रारम्भ कर दिया गया जिससे न केवल आवासियों को शुद्ध दूध उपलब्ध हुआ है बल्कि इससे संस्थागत आय भी बढ़ी है।*

कृषि : *खाली पड़े भूखंड में सब्जियां लगायी गयीं हैं, जिससे यहां संचालित भोजनालय की आवश्यकता की पूर्ति होगी साथ ही संघ की आय भी बढ़ जायेगी। भविष्य में खाली जमीन पर खाद्यान्न उत्पादन की भी योजना है।*

भवन : *अनावश्यक रूप से अनाधिकृत कतिपय भवनों को दूसरों के कब्जों से मुक्त कर इसे रहने लायक बनाने की कार्रवाई चल रही है। परिसर के सभी भवनों की मरम्मत के लिए भी आकलन किया जा रहा है।*

दीप यज्ञ एवं सहभोज : *वर्षों बाद आयोजित, जिसमे सभी परिसरवासी सम्मिलित हुए।*

- कार्य. सम्पादक

11 सितंबर, विनोबा-जयंती

भूदान : विनोबा की विश्व को अद्‌भुत देन

❑ महादेव विद्रोही

18 अप्रैल, 1951 को पोचमपल्ली में श्री रामचन्द्र रेड्डी ने आचार्य विनोबा को 100 एकड़ जमीन भूमिहीनों के लिए दी।

पोचमपल्ली के बाद 19 अप्रैल, 1951 को तंगपल्ली में विनोबाजी का दूसरा पड़ाव था। गांव के लोग फूलमालाओं से विनोबाजी का स्वागत करने आये थे। उन्हें विनोबाजी ने कहा—'मुझे फूल नहीं, मिट्टी दीजिए। मैं भूखा हूं, मुझे जमीन दीजिए।' विनोबाजी के इस आह्वान पर 90 एकड़ जमीन श्री व्यंकट रेड्डी एवं अन्य लोगों की ओर से प्राप्त हुई। शाम की सभा में विनोबाजी ने कहा, 'हर व्यक्ति के पास जो कुछ है, उसे दान करना चाहिए, यही गीता का संदेश है।' यहीं से भूदान का जन्म हुआ। तेलंगाना में 51 दिनों में 200 गांवों में विनोबाजी को 12,201 एकड़ जमीन प्राप्त हुई।

आचार्य विनोबा ने 13 वर्षों तक भूदान के लिए देश भर की पदयात्राएं कीं तथा 5 वर्षों तक तूफान यात्रा हुई। इस ऋषि की भावना का आदर करते हुए लोगों ने 47,63,936 एकड़ से अधिक जमीन भूदान में दी। यह हमारी एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। जो काम कत्ल का सहारा लेकर साम्यवादी नहीं कर सके और जो काम कानून नहीं कर सका उसे करुणा की क्रांति ने कर दिखाया।

विभिन्न राज्यों के भूदान अधिनियम :
1. आंध्र प्रदेश, 2. असम, 3. बिहार, 4. जम्मू एवं कश्मीर, 5. केरल, 6. मैसूर, 7. राजस्थान, 8. पश्चिम बंगाल, 9. कर्नाटक, 10. तमिलनाडु, 11. सौराष्ट्र, 12. हिमाचल, 13. पंजाब, 14. उत्तर प्रदेश, 15. दिल्ली, 16. विंध्य प्रदेश, 17. मध्य भारत, 18. मध्य प्रदेश में अधिनियम बने हुए हैं किन्तु—

गुजरात एवं महाराष्ट्र में भूदान अधिनियम नहीं है। यहां एक सरकारी परिपत्र के आधार पर कार्य हो रहे हैं। पश्चिम बंगाल, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब, हरियाणा सहित कई राज्यों ने अपने यहां भूदान अधिनियमों को समाप्त कर भूदान की जमीन राजस्व विभाग में मिला दी है।

भूदान के आंकड़ों का विश्लेषण :
भूदान की जमीन के संबंध में किस आंकड़े को प्रमाणिक माना जाये, यह एक बड़ी समस्या हो गयी है। सरकार, भूदान बोर्डों एवं सर्वोदय मंडल के आंकड़े एक-दूसरे से मेल नहीं खाते। बिहार में 21,17,873 एकड़ जमीन भूदान में प्राप्त हुई उनमें से 51.69 प्रतिशत (10,94,756) एकड़ दान सिर्फ 6 लोगों ने दिये। बिहार की कुल भूदान-प्राप्ति का 74.19 प्रतिशत (15,71,257 एकड़) 25 दाताओं की ओर से प्राप्त हुई। गुजरात में 1,03,530.11 एकड़ जमीन प्राप्त हुई थी, जिसमें से 24,999,39 एकड़ जमीन का दान सिर्फ एक ही दाता (सौराष्ट्र सरकार) की ओर से मिला। यानी कुल प्राप्ति का 24.14 प्रतिशत एक ही दाता की ओर से प्राप्त हुआ। पश्चिम बंगाल में सर्वाधिक भूदान (10,717) एकड़ पुरुलिया जिले में एवं सबसे कम 1.24 एकड़ हावड़ा जिले में मिला। जलपाईगुड़ी एवं दार्जिलिंग जिले में कोई भूदान प्राप्त नहीं हुआ।

स्वैच्छिक संस्थाओं को भूदान की जमीन

भूदान के नियमों के अनुसार भूमि भूमिहीनों के लिए है। इस संबंध में भारत के सर्वोच्च न्यायालय का फैसला इस प्रकार है :

- In view of the scheme of Bhoodan Yagna the movement which Acharya Vinoba Bhave and later Jaya Prakash Narain carried out and the purpose of the movement clearly indicated that when in Sec. 14 *allotment was contemplated in favour of landless persons it only meant those landless persons whose main source of livelihood was agriculture and who were agriculturists residing in the village where the land is situated and who had no land in their name at that time.*
- It never meant that all those rich persons who are residing in the cities and have properties in their possession but who are technically landless persons as they did not have any agricultural land in their name in the tehsil or the village where the land was situated or acquired by the Bhoodan Samiti that it could be allotted in their favour. This was not the purpose or the philosophy of Bhoodan Yagna.
- *Bhoodan Yagna scheme only contemplated allotment of lands in favour of those landless agricultural labourers who were residing in the village concerned and whose source of livelihood was agriculture.*
- The fundamental principle of the Bhoodan Yagna movemenr is that all children of the soil have an equal right over the Mother Earth, in the same way as those born of a mother have over her. It is, therefore, essential that the entire land of the country should be equitably redistributed anew, providing roughly at least five acres of dry land or one acre of well land to every family.

बावजूद इसके भूमिहीनों को दी जाने वाली हजारों एकड़ जमीन संस्थाओं को दी गयी हैं।

बिहार सरकार ने 16 जून, 2006 को देवब्रत बंद्योपाध्याय की अध्यक्षता में भूमि

सुधार आयोग का गठन किया था। इस आयोग ने अपने 'Interim Report on some Issues relating to Bhoodan in Bihar' में कहा है :

The most outstanding feature of this report is that 11,130.9375 acres were distributed among 59 institutions. The categorizations of 'सार्वजनिक एवं अन्य' is totally vague and confusing from the analysis it is apparent that someone is utilizing the Bhoodan land as his or her Zamindari. (Page-8)'

यानी प्रत्येक संस्था को औसतन 189 एकड़ जमीन दी गयी। सीलिंग की मर्यादा से भी अधिक।

* प्राप्त जानकारी के अनुसार देवब्रत बंदोपाध्याय समिति की अंतिम रिपोर्ट के अनुसार स्वैच्छिक संस्था को दी गयी जमीन का आंकड़ा 11,130,9375 एकड़ से बढ़कर 18000 एकड़ हो गयी है।
* इस संबंध में मध्य प्रदेश भूदान यज्ञ अधिनियम की धारा 33 में इस प्रकार के प्रावधान हैं :
* The Board may allot any land vesting in it for a community purpose or exchange any such land with other land or surrender it to State Govt.
* The land allotted for a community purpose shall vest in the state Govt. from the date of such allotment.

तमिलनाडु भूदान यज्ञ अधिनियम में सन् 1964 को इस संबंध में निम्न क्रांतिकारी संशोधन किये गये। नये संशोधन के अनुसार :

- Annual Income criteria of landless poor eligble to assigned land under present Act from Rs. 3000 (when the enactmen) was made in 1958 to Rs. 25,000 now.
- Houseless person can get Bhoodan law.
- Any person who does not own any house or house site and whose annual income not exceed Rs. 25000.
- Another amendment provides for the Govt. on the recommendation of State Bhoodan Board to grant any land vested in it to *'any person or institution for any public purpose after collecting double the market values of such land.'*

विविध

दिल्ली भूदान यज्ञ अधिनियम 1955 के अनुसार :

- The leasee was entitled to hold the land as long as it continued to be vested in the Board and then could be passed on to his hairs. But he cannot transfer his interest in the land to others nor can be sub-let the land without previous sanction of the Board.
- The leasee acquired the right in the land after expiry of ten years of continuous holding it as lesse.

देवब्रत बंदोपाध्याय समिति की रिपोर्ट

दिल्ली में भूदान में 300 एकड़ जमीन प्राप्त हुई थी इसमें से 180 एकड़ जमीन का वितरण हुआ। सरकार ने काफी बड़ी मात्रा में सेना एवं बेतार स्टेशनों के लिए जमीन अधिग्रहित की, पर उसका कोई मुआवजा नहीं दिया। **भूदान अधिनियमों में प्रावधान था कि भूदान बोर्ड का गठन आचार्य विनोबा भावे की अनुशंसा पर किया जायेगा। 8 जनवरी, 1973 को विनोबाजी ने यह अधिकार सर्व सेवा संघ को दे दिया। इसके अनुसार कई राज्यों ने अपने अधिनियम में संशोधन कर लिए पर कई राज्यों में यथास्थिति विद्यमान है, या इस धारा को ही निकाल दिया गया है।** भूदान आंदोलन के 60 वर्ष से अधिक पूरे हो जाने के बावजूद आज भी बड़ी संख्या में भूदान किसान अपनी जमीन से बेदखल हैं। जिन्हें भूदान की जमीन आवंटित की गयी है उनमें से काफी लोगों के नाम सरकारी रेकार्ड में दर्ज नहीं किये गये हैं। (दाखिल-खारिज)। कई ऐसे केस भी सामने आये हैं जिसमें एक ही जमीन को कई लोगों के नाम आवंटित किया गया। सर्वे में भूदान की अनेक जमीनों को सरकारी जमीन बताया गया है, इसके कारण अनेक समस्याएं खड़ी हो गयी हैं। भूदान की कई जमीनों को सुरक्षित वन (Reserve Forest) में ले लिया गया है एवं वहां से आदाताओं को निकाला जा रहा है।

भूदान में भ्रष्टाचार

जहां एक ओर भूदान आध्यात्मिक भावना के साथ हुआ था वहीं दूसरी ओर कुछ लोगों ने उसका उपयोग अपने स्वार्थ के लिए किया। विनोबाजी के रहते भूदान में भ्रष्टाचार शुरू हो गये थे। इलाहाबाद का बरनपुर इसका एक उदाहरण है। स्वर्गीय धीरेन्द्र मजूमदान को इसके लिए उपवास करना पड़ा। टाइम्स ऑफ इंडिया में 7 सितंबर, 2008 को प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार गुजरात में भूदान की 2.5 करोड़ की जमीन बेची गयी है। यह राशि 20 करोड़ रुपये तक पहुंच सकती है। गुजरात में अभी भी 52,545.33 एकड़ जमीनों का वितरण बाकी है, जिसे गरीबों के बीच वितरित नहीं किया जा सका है एवं बिल्डरों को औने-पौने भावों पर पर्दे के पीछे बेचा जा रहा है। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आज तक किसी भी भूदान भ्रष्टाचारी के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की गयी। फलस्वरूप उन्हें बढ़ावा मिलता रहा।

इन स्थितियों को देखते हुए कविवर नीरज की निम्न पंक्तियां याद आ रही हैं :

मेरे यारों का कितना हुआ पतन
हमसे कहते हुए भी न कहते बने
जिनके होठों पे थी रहवरी की कसम
उनकी फितरत में अब रहजनी आ गयी।
देखकर वक्त का ये अब फैसला
हमको रोते हुए भी हँसी आ गयी।
हमने देखे जो चेहरे ये इन्सान के
हमको अपने पे शर्मिन्दगी आ गयी।

उड़ीसा सरकार धन्यवाद की पात्र है कि उसने भ्रष्टाचार में शामिल होने के कारण वहां के भूदान बोर्ड के अध्यक्ष के विरुद्ध तथा 127 एकड़ भूदान की जमीन खरीदने वाले के विरुद्ध मुकदमा दर्ज किया गया।

ग्रामदान

'सबै भूमि गोपाल की, नहीं किसी की मालिकी। सम्पत्ति सब रघुपति के आहे।' इन भावनाओं के साथ ग्रामदान का उद्भव हुआ।

कल्पना थी कि सभी भूमिधारक अपनी भूमि का पांचवाँ भाग ग्रामदान में दे दें। नारा था— *दान दो इकट्ठा, बीघे में कट्ठा।*

पहला ग्रामदान उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जिले में मंगरोठ में हुआ। इसके तीन वर्ष के बाद दूसरा ग्रामदान उड़ीसा में हुआ। 1959 में ग्रामदान का व्यवस्थित कार्य आरंभ हुआ। नया सूत्र पेश हुआ। यदि 80 प्रतिशत भूमिधारक अपनी भूमि की मालिकी छोड़ने को तैयार हों तो उस गांव को ग्रामदानी गांव माना जायेगा। इसे और सरल बनाया गया। **जिस गांव के 51 प्रतिशत भूमिधारक अपनी भूमि का 20वाँ भाग विसर्जित करते हैं तो उस गांव को ग्रामदानी गांव माना जायेगा। बिहार में सबसे ज्यादा ग्रामदान हुए। प्रखंड दान, जिला दान एवं बिहार दान घोषित हो गया। शिकायतें भी खूब आयीं। अंततः विनोबा को कहना पड़ा–भूदान बोगस, बिहार बोगस, बाबा बोगस, इन सबों के बावजूद एक नयी आशा का संचार हुआ। देशभर में गूँज उठा–बोल रहा है संत विनोबा करके ऊंची बांह रे, ग्रामदान से बन जायेगा गोकुल अपना गांव रे।**

2-3 नवंबर, 1963 को योजना आयोग के निमंत्रण पर दिल्ली में ग्रामदान परिषद की बैठक हुई। इसका उद्देश्य ग्रामदानी गांवों के विकास की समस्याओं, भूमिहीनों में भूमि का वितरण और उसके पुनर्वास पर विचार करना था। इसमें सामुदायिक विकास एवं सहकारिता मंत्रालय, कृषि मंत्रालय के अतिरिक्त विभिन्न राज्यों के राजस्व एवं योजना सचिव, सर्व सेवा संघ, गांधी स्मारक निधि, खादी ग्रामोद्योग आयोग आदि के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

इस बैठक में यह विचार आया कि खादी ग्रामोद्योग आयोग जैसा ग्रामदान आयोग या निगम बनाया जाये।

विभिन्न राज्यों के ग्रामदान अधिनियम

1. असम ग्रामदान अधिनियम 1961, 2. राजस्थान ग्रामदान अधिनियम 1960 (नं. 12), 3. उड़ीसा भूदान एवं ग्रामदान अधिनियम 1970, 4. गुजरात पंचायत (ग्रामदान प्रोविजन्स) अधिनियम 1966 (नं. 23), 5. बिहार ग्रामदान अधिनियम 1965, 6. पश्चिम बंगाल ग्रामदान अधिनियम 1964, 7. उत्तर प्रदेश ग्रामदान अधिनियम 1965।

'भूदान' आर्थिक समता की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। एक नवीन आशा का संचार हुआ था। ऐसा लगता था कि पूरे देश में एक अद्‌भुत क्रांति होने जा रही है। श्री रामचन्द्र रेड्डी की 100 एकड़ भूमि दान से जो गंगा प्रवाहित हुई, उसमें देशभर में करीब 48 लाख एकड़ जमीन प्राप्त हुई। इसे सहजता से लोग विश्वास नहीं कर पाते हैं। लेकिन यह यथार्थ दस्तावेजों के साथ उपलब्ध है। क्या अच्छा होता कि जो जमीनें भूदान में मिलीं, उनका बंटवारा भूमिहीनों के बीच हो गया होता। पर हमारा दुर्भाग्य है कि भूदान प्राप्ति के 60 वर्षों से अधिक के बाद भी करीब 50 प्रतिशत भूदान भूमि का वितरण बाकी है। विनोबाजी के रहते-रहते भूदान में भ्रष्टाचार की गंभीर शिकायतें मिलने लगी थीं। एक बार श्री लालबहादुर शास्त्री ने कहा था कि भूदान एवं भ्रष्टाचार एक-दूसरे के पर्याय बन गये हैं। उस समय जो भी स्थिति हो आज यह यथार्थ बन गया है। **समाचार-पत्रों की रिपोर्ट के अनुसार अकेले आंध्र प्रदेश में करीब साढ़े तीन हजार करोड़ रुपये का घोटाला हुआ है। एक बार किसी ने विनोबाजी से पूछा कि उनके जीवन की सबसे बड़ी भूल क्या थी? विनोबाजी ने जवाब में कहा, भूदान किसानों का संगठन नहीं बनाना, उनकी सबसे बड़ी भूल थी। देश में करीब 6 लाख लोगों को भूदान सर्वोदय आंदोलन के पास आज एक अतुलनीय शक्ति होती।**

कुछ बिन्दु जिन पर हमारा ध्यान केन्द्रित होना चाहिए

* जिन्हें भूदान की जमीन मिली है उनमें से बड़ी संख्या में लोगों का दाखिल-खारिज नहीं हो पाया है।
* भूदान की जमीनों को वन विभाग वाले वन भूमि बता रहे हैं।
* कई स्थानों पर सरकार ने भूदान की जमीनों का अधिग्रहण किया है। इसका मुआवजा भूदान किसान को देना चाहिए, समाचार मिला है कि बिहार भूदान यज्ञ समिति ने मुआवजा के पैसे भूदान किसान को देने के बजाय आलीशान गाड़ी खरीदी है।
* भूदान की जमीन भूमिहीन खेतिहर मजदूरों के लिए थी, पर बड़ी मात्रा में इसे संस्थाओं ने हथिया लिये हैं। बंद्योपाध्याय आयोग की रिपोर्ट के अनुसार अकेले बिहार में करीब 11000 एकड़ जमीन संस्थाओं को दी गयी हैं, जिसका वे अपनी जमींदारी के रूप में उपयोग कर रहे हैं।
* कई अदालतों ने भूदान किसानों के पक्ष में फैसले दिये हैं। इसका स्वागत करने के बजाय एक भूदान समिति ने अदालत के इस आदेश को चुनौती दी है।
* समय के साथ स्थितियों में परिवर्तन को देखते हुए पूरे देश के लिए समान भूदान-ग्रामदान अधिनियम का बनना आज समय की मांग है।
* कुछ जगहों पर भूदान समिति सिर्फ सरकारी प्रतिनिधि हैं। ऐसी समिति किस काम की?
* समय-समय पर शिकायतें मिलती रही हैं कि भूदान समितियों एवं सरकारी कर्मचारियों से सांठ-गांठ कर भूदान की जमीन बदली जा रही है। इस पर तुरंत अंकुश लगाना चाहिए। अगर किसी कारण बदलने की नौबत आती है तो बदलाव की अनुमति क्षेत्रफल के अनुसार नहीं बाजार मूल्य के अनुसार होना चाहिए।
* देशभर के भूदान के रेकर्डों का डिजिटलाइजेशन किया जाना चाहिए।
* आदाता को जमीन देते समय दाखिल-खारिज कराकर ही जमीन देनी चाहिए।
* सभी भूदान भूमि का न्यायपूर्ण वितरण, आदाता को वैधानिक अधिकार तथा भूदान के व्यापारियों को कठोर सजा मिलने पर ही भूदान की मंजिल प्राप्त की जा सकेगी। ❑

14 सितंबर राष्ट्रभाषा हिन्दी-दिवस

गांधी, काका कालेलकर, विनोबा एवं हमारी राष्ट्रभाषा

❑ अशोक मोती

स्वतंत्रता के मिलने के बाद स्वतंत्र भारत के लोगों के मन में यह प्रश्न बलवती होकर उठने लगा कि भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्र की राष्ट्रभाषा क्या हो? दूसरा प्रश्न था कि क्या अंग्रेजी भी भारत की राष्ट्रभाषा बनने की योग्यता रखती है?

दरअसल राष्ट्रभाषा और खासकर हिन्दी के स्वरूप के बारे में गांधीजी जब दक्षिण अफ्रीका में थे तभी से अपनी राय व्यक्त करते रहे थे। वे हिन्दी और उर्दू दोनों को अलग भाषाएं नहीं मानते थे। गांधी ने 1909 में दक्षिण अफ्रीका में कहा, ''हिन्दी और उर्दू दो अलग भाषाएं नहीं हैं। बल्कि एक ही भाषा की दो कृत्रिम साहित्यिक शैलियां हैं जो आम लोगों से दूर करा दी गयी हैं।'' गांधीजी की दृष्टि में यह भाषा हिन्दुस्तानी थी जिसके संबंध में उनकी दृष्टि भी स्पष्ट थी।

लाहौर के बाद करांची में 29 मार्च, 1931 को कांग्रेस अधिवेशन हुआ, जो 27 मार्च, 1931 को भगत सिंह, सुखदेव एवं राजगुरु को फांसी दी जाने के 6 दिन बाद का समय था। इस अधिवेशन का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव इन शब्दों में इन शहीदों के सम्मान में स्वीकृत हुआ—''किसी तरह की राजनीतिक हिंसा से अपने को अलग रखते और उसे अमान्य करते हुए कांग्रेस उनकी वीरता और बलिदान के प्रति अपनी प्रशंसा को लिखित रूप में व्यक्त कर रही है।'' इस अधिवेशन में दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव मौलिक अधिकारों और आर्थिक नीति पर था, जिसका उद्देश्य भविष्य के जनतंत्र में कांग्रेस के राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रमों का रूप प्रस्तुत करना था। इसके स्वरूप का निर्धारण स्पष्ट रूप से पहले नहीं किया गया था। इसी अधिवेशन का तीसरा महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव था राष्ट्रीय भाषाओं का विकास और भाषाई आधार पर भारत के प्रांत का संगठन।

इस अधिवेशन की यहां चर्चा का तात्पर्य इस बात को स्पष्ट करना है कि इसी अधिवेशन से भाषा के साथ-साथ गांधीवादी दर्शन की राजनैतिक सफलता शुरू हुई तथा वहीं से कांग्रेस के कार्यक्रम में परिवर्तनकारी समाजवादी प्रवृत्तियों के प्रभावशाली ढंग से आने का सूत्रपात भी हुआ।

गांधी ने विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाने को दिमाग पर एक लादा हुआ बोझ बतलाते हुए कहा, ''मां के दूध के साथ जो संस्कार मिलते हैं और जो मीठे शब्द सुनायी देते हैं, उसके और पाठशाला के बीच जो मेल होना चाहिए, वह विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा लेने से टूट जाता है। इसे तोड़ने वालों का हेतु पवित्र हो तो भी वे जनता के दुश्मन हैं। हम ऐसी शिक्षा के विचार को मातृ-द्रोह कहते हैं।''

स्पष्टतः गांधी युग में राष्ट्रभाषा के प्रश्न को लेकर काफी वाद-विवाद हुआ था। स्वराज में भाषा की समस्या ने एक नया रूप लिया। गांधी ने इससे आगे बढ़कर कहा, ''मैकाले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली, वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी। दरअसल विदेशी भाषाओं ने हमारी देशी भाषाओं की प्रगति और विकास को रोक दिया है। अगर मेरे हाथ में तानाशाही सत्ता हो, तो मैं आज से इस शिक्षा को बंद कर दूं।...मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियां क्यों न हों मैं उससे उसी तरह चिपका रहूंगा जिस तरह अपनी मां की छाती से। वही मुझे जीवनदायी दूध दे सकती है।''

गांधी जब भाषा के संदर्भ में इतनी तल्खी टिप्पणियां कर रहे थे तो उनके मन में राष्ट्रीय भाषा की महत्ता प्रकट थी। भाषा केवल विचारों के आदान-प्रदान का साधन नहीं है। वह प्रजा की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्मय भी है। अंग्रेजी स्वाभाविक रूप से हमारी संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम बन ही नहीं सकती थी, यह बात भी गांधी के मन में स्पष्ट थी। गांधी ने कहा, ''राष्ट्रभाषा तो वही हो सकती है जो अमलदारों के लिए सरल हो, जो भारतवर्ष के अधिकांश लोग बोलते हों, जो आम जनता के लिए समझने में बिलकुल आसान हो और जिसमें भारतवर्ष के लोगों के लिए आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार चलाना सुलभ हो, ऐसी भाषा केवल हिन्दी ही हो सकती है।''

सन् 1935 में काका साहेब कालेलकर ने राष्ट्रभाषा प्रचार का कार्य अपने हाथ में ले लिया। उससे पहले वे गांधी के साथ शिक्षा परिषदों की बैठकों में जाया करते और गांधी उन्हें भाषा एवं शिक्षा पर अध्ययन करने को प्रोत्साहित करते। सन् 1917 में भड़ौच, गुजरात शिक्षा परिषद के दूसरे अधिवेशन में काका गांधी के साथ थे। काका ने एक निबंध पढ़ा, जिसका विषय था—'हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा।' गांधी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की पुरजोर हिमायत की। इसी तरह 1910 में मदनमोहन मालवीय द्वारा स्थापित हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 8वां अधिवेशन 1918 में इन्दौर में हुआ। गांधीजी ने अध्यक्षता की तथा कहा कि मैंने कई बार कहा है कि हिन्दी ही वह भाषा है जो राष्ट्रभाषा बन सकती है। भाषा वही श्रेष्ठ है जिसको जनसमूह सहज रूप से समझ लेता है। भाषा का मूल करोड़ों मनुष्य रूपी हिमालय में मिलेगा और उसी में रहेगा। काका गांधी के साथ थे।

गांधी की हत्या के बाद देश में अनेकानेक परिस्थितियां ऐसी आयीं जिनमें देश के लोकजीवन को छिन्न-भिन्न होने से बचाने में विनोबा ही निमित्त बने। भाषा के सवाल पर 1965 में पूरे देश में एक भीषण दावानल जाग उठा। सारे देश में खलबली मच गयी। फरवरी महीने में खासकर दक्षिण भारत में, भारी हिंसा एवं उपद्रव हुए। केन्द्रीय मंत्रिमंडल से दक्षिण भारत के दो मंत्रियों ने इस्तीफे दे दिये। 12 फरवरी, 1965 को गांधी के श्राद्ध दिवस पर विनोबा ने उपवास शुरू किया। उन्होंने कहा, ''भाषा के नाम पर देश में आज जिस प्रकार की अशांति और अहिंसक मनोवृत्ति प्रकट हुई है, उसके कारण मेरे मन में गहरी वेदना जागी है। मेरा चिन्तन चलता रहा और मुझे अंदर से एक प्रेरणा हुई। उसी प्रेरणा के कारण मैं आज से अनिश्चित समय के लिए उपवास शुरू कर रहा हूं। मैंने अपने-आपको भगवान के हाथों में सौंप दिया है। महात्मा गांधी और भगवान, ये दोनों मेरे इस संकल्प के साक्षी हैं। इनकी आज्ञा के रूप में ही मुझे प्रेरणा मिली है।''

उपवास पांच दिन चले और लोगों के दिल पर इसका पावनकारी प्रभाव हुआ। उपद्रव बंद हो गये। केन्द्रीय सरकार के मंत्रियों ने अपने इस्तीफे वापस ले लिये। प्रधानमंत्री व राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने विनोबा के ''प्रेम के तीन सूत्रों'' को स्वीकार कर लिया। इस तरह विनोबा के उपवास ने भाषा पर देश में फैले दावानल को शांत किया।

निःसंदेह गांधी के बाद काका कालेलकर एवं विनोबा इस देश में आजन्म अपने विभिन्न आंदोलनों के जरिए स्वस्थ लोकमत के निर्माण का कार्य चलाते रहे।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने में हम गांधी, काका साहेब कालेलकर एवं विनोबा के योगदान को कभी नहीं भुला सकते। राष्ट्रभाषा दिवस पर इन्हें कोटिशः नमन! ❑

विनोबा! तुम्हारी जय हो!

-भवानी प्रसाद मिश्र

जैसे बिजली घूमती है घन में
ऐसे आजकल घूमता है मन में
तुम्हारा नाम!
अंधेरा रह-रह कर भर जाता है
लेकिन क्या इससे
उसका कुछ घट जाता है?
तुम बीस बरस तक सूरज रहे
और बादल जो उठे हैं
वे तुमने उठाये हैं
और बरसेंगे जब वे अंधेरे के बावजूद
तो हरी हो जायेगी देश की धरती!
तुम्हारी जय हो!
मेरे मन का अंधेरा झूठा है
सब देखेंगे
आज नहीं, कल तुम्हारा तेज
हौले हलके अनजाने बंजर विस्तारों पर
आषाढ़-सावन बनकर टूटा है।
'तुम्हारी जय हो!' कहना
कोई कोरी कामना नहीं है, क्योंकि
थामना नहीं है, जिन्हें गिरते हुए स्तम्भ
देश के, जगत के, मानवता के
देखते रहना है केवल गुमसुम
उनमें नहीं हो तुम।
तिस पर बल नहीं है तुम्हारे पास
कोई राम के सिवा
इसलिए तुम कुछ करते नहीं हो
राम के काम के सिवा।
और विनम्र हो सफलता के क्षण में
आम्र के वृक्षों से भी ज्यादा।
बाधा जो दीखती लोगों की
वह इसलिए खोटी है
सारी दुनिया तुम्हारे डगों के आगे
छोटी है।
तुम्हारी जय हो!
निर्भय हो किसान धरती पर
लहराये सर्वोदय
बंजर में, पहाड़ पर, परती पर!

बाबा 'राष्ट्र' कहता ही नहीं।
'जय जगत' कहता है।
अपना 'राष्ट्र राष्ट्र' जपते रहेंगे
तो निरंतर लड़ाइयां चलती रहेंगी।
विनोबा का
जय जगत

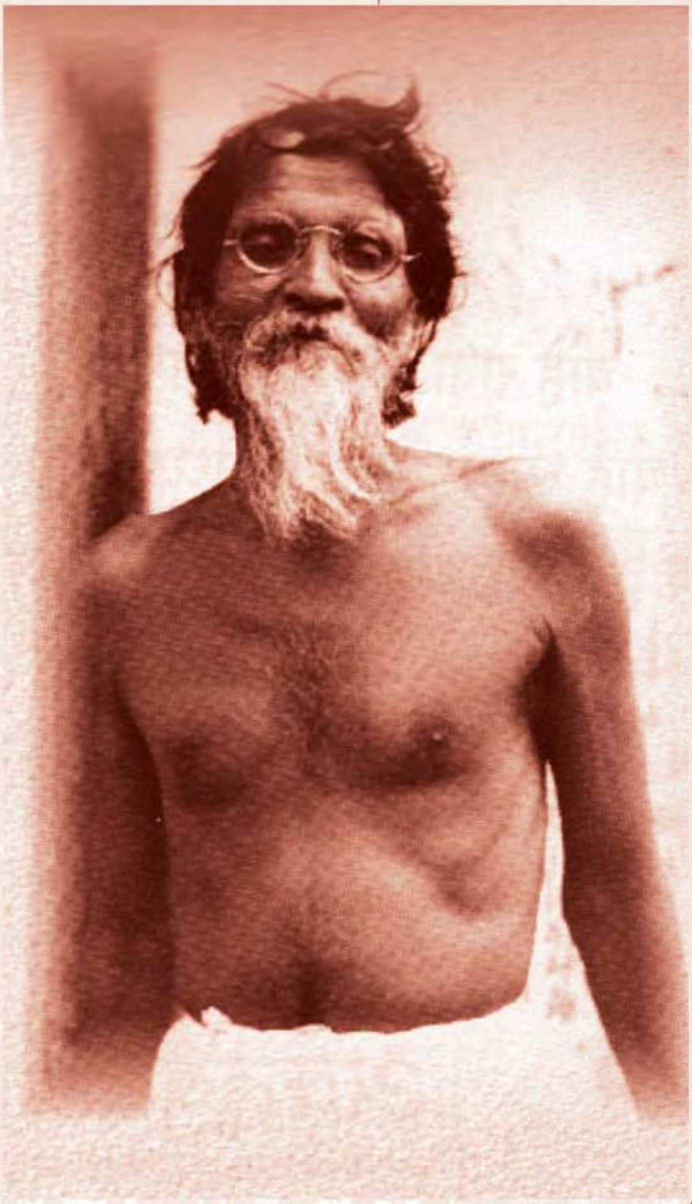

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) अशोक भारत (प्रकाशक), सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित तथा सर्व सेवा संघ-परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001, फोन/फैक्स नं. 0542-2440385 से प्रकाशित। संपादक : बिमल कुमार, कार्य.संपादक : अशोक मोती। छपी प्रतियाँ : 1400